



**Disputatio critico-theologica qua vindicatur Lucae,
Apostolorum conventum, Actuum apostolicorum capite XV
referentis, contra recentissimas dubitationes historica**

<https://hdl.handle.net/1874/322806>

DISPUTATIO CRITICO-THEOLOGICA,

QUA

VINDICATUR LUCAE, APOSTOLORUM CONVENTUM, ACTUUM APOSTOLICORUM CAPITE XV
REFERENTIS, CONTRA RECENTISSIMAS
DUBITATIONES FIDES HISTORICA.

1
2
3
4
5
6
7
8
9
10
11
12
13
14
15
16
17
18
19
20
21
22
23
24
25
26
27
28
29
30
31
32
33
34
35
36
37
38
39
40
41
42
43
44
45
46
47
48
49
50
51
52
53
54
55
56
57
58
59
60
61
62
63
64
65
66
67
68
69
70
71
72
73
74
75
76
77
78
79
80
81
82
83
84
85
86
87
88
89
90
91
92
93
94
95
96
97
98
99
100
101
102
103
104
105
106
107
108
109
110
111
112
113
114
115
116
117
118
119
120
121
122
123
124
125
126
127
128
129
130
131
132
133
134
135
136
137
138
139
140
141
142
143
144
145
146
147
148
149
150
151
152
153
154
155
156
157
158
159
160
161
162
163
164
165
166
167
168
169
170
171
172
173
174
175
176
177
178
179
180
181
182
183
184
185
186
187
188
189
190
191
192
193
194
195
196
197
198
199
200
201
202
203
204
205
206
207
208
209
210
211
212
213
214
215
216
217
218
219
220
221
222
223
224
225
226
227
228
229
230
231
232
233
234
235
236
237
238
239
240
241
242
243
244
245
246
247
248
249
250
251
252
253
254
255
256
257
258
259
260
261
262
263
264
265
266
267
268
269
270
271
272
273
274
275
276
277
278
279
280
281
282
283
284
285
286
287
288
289
290
291
292
293
294
295
296
297
298
299
300
301
302
303
304
305
306
307
308
309
310
311
312
313
314
315
316
317
318
319
320
321
322
323
324
325
326
327
328
329
330
331
332
333
334
335
336
337
338
339
340
341
342
343
344
345
346
347
348
349
350
351
352
353
354
355
356
357
358
359
360
361
362
363
364
365
366
367
368
369
370
371
372
373
374
375
376
377
378
379
380
381
382
383
384
385
386
387
388
389
390
391
392
393
394
395
396
397
398
399
400
401
402
403
404
405
406
407
408
409
410
411
412
413
414
415
416
417
418
419
420
421
422
423
424
425
426
427
428
429
430
431
432
433
434
435
436
437
438
439
440
441
442
443
444
445
446
447
448
449
450
451
452
453
454
455
456
457
458
459
460
461
462
463
464
465
466
467
468
469
470
471
472
473
474
475
476
477
478
479
480
481
482
483
484
485
486
487
488
489
490
491
492
493
494
495
496
497
498
499
500
501
502
503
504
505
506
507
508
509
510
511
512
513
514
515
516
517
518
519
520
521
522
523
524
525
526
527
528
529
530
531
532
533
534
535
536
537
538
539
540
541
542
543
544
545
546
547
548
549
550
551
552
553
554
555
556
557
558
559
550
551
552
553
554
555
556
557
558
559
560
561
562
563
564
565
566
567
568
569
570
571
572
573
574
575
576
577
578
579
580
581
582
583
584
585
586
587
588
589
590
591
592
593
594
595
596
597
598
599
600
601
602
603
604
605
606
607
608
609
610
611
612
613
614
615
616
617
618
619
620
621
622
623
624
625
626
627
628
629
630
631
632
633
634
635
636
637
638
639
640
641
642
643
644
645
646
647
648
649
650
651
652
653
654
655
656
657
658
659
660
661
662
663
664
665
666
667
668
669
660
661
662
663
664
665
666
667
668
669
670
671
672
673
674
675
676
677
678
679
680
681
682
683
684
685
686
687
688
689
690
691
692
693
694
695
696
697
698
699
700
701
702
703
704
705
706
707
708
709
710
711
712
713
714
715
716
717
718
719
710
711
712
713
714
715
716
717
718
719
720
721
722
723
724
725
726
727
728
729
720
721
722
723
724
725
726
727
728
729
730
731
732
733
734
735
736
737
738
739
730
731
732
733
734
735
736
737
738
739
740
741
742
743
744
745
746
747
748
749
740
741
742
743
744
745
746
747
748
749
750
751
752
753
754
755
756
757
758
759
750
751
752
753
754
755
756
757
758
759
760
761
762
763
764
765
766
767
768
769
760
761
762
763
764
765
766
767
768
769
770
771
772
773
774
775
776
777
778
779
770
771
772
773
774
775
776
777
778
779
780
781
782
783
784
785
786
787
788
789
780
781
782
783
784
785
786
787
788
789
790
791
792
793
794
795
796
797
798
799
790
791
792
793
794
795
796
797
798
799
800
801
802
803
804
805
806
807
808
809
800
801
802
803
804
805
806
807
808
809
810
811
812
813
814
815
816
817
818
819
810
811
812
813
814
815
816
817
818
819
820
821
822
823
824
825
826
827
828
829
820
821
822
823
824
825
826
827
828
829
830
831
832
833
834
835
836
837
838
839
830
831
832
833
834
835
836
837
838
839
840
841
842
843
844
845
846
847
848
849
840
841
842
843
844
845
846
847
848
849
850
851
852
853
854
855
856
857
858
859
850
851
852
853
854
855
856
857
858
859
860
861
862
863
864
865
866
867
868
869
860
861
862
863
864
865
866
867
868
869
870
871
872
873
874
875
876
877
878
879
870
871
872
873
874
875
876
877
878
879
880
881
882
883
884
885
886
887
888
889
880
881
882
883
884
885
886
887
888
889
890
891
892
893
894
895
896
897
898
899
890
891
892
893
894
895
896
897
898
899
900
901
902
903
904
905
906
907
908
909
900
901
902
903
904
905
906
907
908
909
910
911
912
913
914
915
916
917
918
919
910
911
912
913
914
915
916
917
918
919
920
921
922
923
924
925
926
927
928
929
920
921
922
923
924
925
926
927
928
929
930
931
932
933
934
935
936
937
938
939
930
931
932
933
934
935
936
937
938
939
940
941
942
943
944
945
946
947
948
949
940
941
942
943
944
945
946
947
948
949
950
951
952
953
954
955
956
957
958
959
950
951
952
953
954
955
956
957
958
959
960
961
962
963
964
965
966
967
968
969
960
961
962
963
964
965
966
967
968
969
970
971
972
973
974
975
976
977
978
979
970
971
972
973
974
975
976
977
978
979
980
981
982
983
984
985
986
987
988
989
980
981
982
983
984
985
986
987
988
989
990
991
992
993
994
995
996
997
998
999
990
991
992
993
994
995
996
997
998
999
1000

DISPUTATIO CRITICO-THEOLOGICA,

QUA

VINDICATUR LUCAE, APOSTOLORUM CONVENTUM, ACTUUM APOSTOLICORUM CAPITE XV REFERENTIS, CONTRA RECENTISSIMAS DUBITATIONES FIDES HISTORICA,

QUAM,

ANNUENTE SUMMO NUMINE,

EX AUCTORITATE RECTORIS MAGNIFICI

PETRI JOHANNIS ISAÄCI DE FREMERY,

MATH. MAG. PHIL. NAT. MED. ET ART. OBST. DOCT. ET PROF.

NEC NON

AMPLISSIMI SENATUS ACADEMICI CONSENSU,

ET

NOBILISSIMAE FACULTATIS THEOLOGICAE DECRETO,

Pro Gradu Doctoratus,

SUMMISQUE IN

THEOLOGIA HONORIBUS AC PRIVILEGIIS,

IN ACADEMIA RHENO-TRAJECTINA,

RITE AC LEGITIME CONSEQUENDIS,

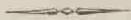
PUBLICO ATQUE SOLEMNI EXAMINI SUBMITTIT

THEODORUS CAROLUS MATTHAEUS VON BAUMHAUER,

Bruxellensis,

PHIL. THEOR. MAG. LIT. HUM. DOCT. SACRORUM ANTISTITES IN FAGO JAARSVELD.

AD DIEM XII OCTOBris, ANNI MDCCXLVIII, HORA I.



TRAJECTI AD RHENUM,

TYPIS MANDAVIT K. J. G I E B E N.

MDCCXLVIII.

Лицо юности не смирило

Илья и Ильинка, а то и погиб
Учитель, наставник и друг, и жест
Глаза твои в язвах этикеток
Сломаны были, склонялись

Сердце твое, боязнь, страх
Словно вспышка молнии
Поднялся в твоих глазах свет
Ильи и Ильинки

Вспомнил о земле, о Господе и о Богородице
Ильи и Ильинки

Сердце твое, боязнь, страх
Словно вспышка молнии
Поднялся в твоих глазах свет
Ильи и Ильинки

Сердце твое, боязнь, страх
Словно вспышка молнии
Поднялся в твоих глазах свет
Ильи и Ильинки

Сердце твое, боязнь, страх
Словно вспышка молнии
Поднялся в твоих глазах свет
Ильи и Ильинки

Сердце твое, боязнь, страх
Словно вспышка молнии
Поднялся в твоих глазах свет
Ильи и Ильинки

Сердце твое, боязнь, страх
Словно вспышка молнии
Поднялся в твоих глазах свет
Ильи и Ильинки

Сердце твое, боязнь, страх
Словно вспышка молнии
Поднялся в твоих глазах свет
Ильи и Ильинки

VIRIS CLARISSIMIS

H. BOUMAN,

H. J. ROIJAAARDS

ET

H. E. VINKE,

PROMOTORI AESTUMATISSIMO,

PRAECEPTORIBUS OPTIME DE ME MERITIS

SACRUM.

16
17
18
19
20
21
22
23
24
25
26
27
28
29
30
31
32
33
34
35
36
37
38
39
40
41
42
43
44
45
46
47
48
49
50
51
52
53
54
55
56
57
58
59
60
61
62
63
64
65
66
67
68
69
70
71
72
73
74
75
76
77
78
79
80
81
82
83
84
85
86
87
88
89
90
91
92
93
94
95
96
97
98
99
100
101
102
103
104
105
106
107
108
109
110
111
112
113
114
115
116
117
118
119
120
121
122
123
124
125
126
127
128
129
130
131
132
133
134
135
136
137
138
139
140
141
142
143
144
145
146
147
148
149
150
151
152
153
154
155
156
157
158
159
160
161
162
163
164
165
166
167
168
169
170
171
172
173
174
175
176
177
178
179
180
181
182
183
184
185
186
187
188
189
190
191
192
193
194
195
196
197
198
199
200
201
202
203
204
205
206
207
208
209
210
211
212
213
214
215
216
217
218
219
220
221
222
223
224
225
226
227
228
229
230
231
232
233
234
235
236
237
238
239
240
241
242
243
244
245
246
247
248
249
250
251
252
253
254
255
256
257
258
259
260
261
262
263
264
265
266
267
268
269
270
271
272
273
274
275
276
277
278
279
280
281
282
283
284
285
286
287
288
289
290
291
292
293
294
295
296
297
298
299
300
301
302
303
304
305
306
307
308
309
310
311
312
313
314
315
316
317
318
319
320
321
322
323
324
325
326
327
328
329
330
331
332
333
334
335
336
337
338
339
340
341
342
343
344
345
346
347
348
349
350
351
352
353
354
355
356
357
358
359
360
361
362
363
364
365
366
367
368
369
370
371
372
373
374
375
376
377
378
379
380
381
382
383
384
385
386
387
388
389
390
391
392
393
394
395
396
397
398
399
400
401
402
403
404
405
406
407
408
409
410
411
412
413
414
415
416
417
418
419
420
421
422
423
424
425
426
427
428
429
430
431
432
433
434
435
436
437
438
439
440
441
442
443
444
445
446
447
448
449
450
451
452
453
454
455
456
457
458
459
460
461
462
463
464
465
466
467
468
469
470
471
472
473
474
475
476
477
478
479
480
481
482
483
484
485
486
487
488
489
490
491
492
493
494
495
496
497
498
499
500
501
502
503
504
505
506
507
508
509
510
511
512
513
514
515
516
517
518
519
520
521
522
523
524
525
526
527
528
529
530
531
532
533
534
535
536
537
538
539
540
541
542
543
544
545
546
547
548
549
550
551
552
553
554
555
556
557
558
559
550
551
552
553
554
555
556
557
558
559
560
561
562
563
564
565
566
567
568
569
570
571
572
573
574
575
576
577
578
579
580
581
582
583
584
585
586
587
588
589
580
581
582
583
584
585
586
587
588
589
590
591
592
593
594
595
596
597
598
599
590
591
592
593
594
595
596
597
598
599
600
601
602
603
604
605
606
607
608
609
610
611
612
613
614
615
616
617
618
619
620
621
622
623
624
625
626
627
628
629
630
631
632
633
634
635
636
637
638
639
640
641
642
643
644
645
646
647
648
649
650
651
652
653
654
655
656
657
658
659
660
661
662
663
664
665
666
667
668
669
660
661
662
663
664
665
666
667
668
669
670
671
672
673
674
675
676
677
678
679
680
681
682
683
684
685
686
687
688
689
690
691
692
693
694
695
696
697
698
699
690
691
692
693
694
695
696
697
698
699
700
701
702
703
704
705
706
707
708
709
710
711
712
713
714
715
716
717
718
719
720
721
722
723
724
725
726
727
728
729
720
721
722
723
724
725
726
727
728
729
730
731
732
733
734
735
736
737
738
739
730
731
732
733
734
735
736
737
738
739
740
741
742
743
744
745
746
747
748
749
740
741
742
743
744
745
746
747
748
749
750
751
752
753
754
755
756
757
758
759
760
761
762
763
764
765
766
767
768
769
760
761
762
763
764
765
766
767
768
769
770
771
772
773
774
775
776
777
778
779
780
781
782
783
784
785
786
787
788
789
780
781
782
783
784
785
786
787
788
789
790
791
792
793
794
795
796
797
798
799
790
791
792
793
794
795
796
797
798
799
800
801
802
803
804
805
806
807
808
809
810
811
812
813
814
815
816
817
818
819
810
811
812
813
814
815
816
817
818
819
820
821
822
823
824
825
826
827
828
829
820
821
822
823
824
825
826
827
828
829
830
831
832
833
834
835
836
837
838
839
830
831
832
833
834
835
836
837
838
839
840
841
842
843
844
845
846
847
848
849
840
841
842
843
844
845
846
847
848
849
850
851
852
853
854
855
856
857
858
859
860
861
862
863
864
865
866
867
868
869
860
861
862
863
864
865
866
867
868
869
870
871
872
873
874
875
876
877
878
879
880
881
882
883
884
885
886
887
888
889
880
881
882
883
884
885
886
887
888
889
890
891
892
893
894
895
896
897
898
899
890
891
892
893
894
895
896
897
898
899
900
901
902
903
904
905
906
907
908
909
910
911
912
913
914
915
916
917
918
919
910
911
912
913
914
915
916
917
918
919
920
921
922
923
924
925
926
927
928
929
920
921
922
923
924
925
926
927
928
929
930
931
932
933
934
935
936
937
938
939
930
931
932
933
934
935
936
937
938
939
940
941
942
943
944
945
946
947
948
949
940
941
942
943
944
945
946
947
948
949
950
951
952
953
954
955
956
957
958
959
960
961
962
963
964
965
966
967
968
969
960
961
962
963
964
965
966
967
968
969
970
971
972
973
974
975
976
977
978
979
970
971
972
973
974
975
976
977
978
979
980
981
982
983
984
985
986
987
988
989
980
981
982
983
984
985
986
987
988
989
990
991
992
993
994
995
996
997
998
999
990
991
992
993
994
995
996
997
998
999
1000

P R A E F A T I O.

*Quum ante biennium S. S. Ministerii Candidatis ad-
scriberer, continuo iis studiis me applicui, quae vulgo In-
troitus ad N. T. nomine designantur. In Critices altioris
campo versatus, ad recentissimae, qua prodiit, faciei,
Tubingensium Theologorum criticā prolatae, cognitionem
comparandam primaria scripta adii, unde et Tubingen-
sium critica, et quae iis opposuerunt Theologi cognoscun-
tur¹⁾. Hoc agens dissertationis argumentum invenisse*

1) Praecipuorum scriptorum, quae ab utraque parte edita fuerunt,
catalogum dedit Vener. A. Niermeijer: *de kritiek der Tubingsche
school, inzonderheid ten aanzien van den brief aan de Efeziërs, beoordeeld.*
's Gravenhage 1848, pag. 6—12, coll. pag. 200. His addatur: Ebrard,

mihi videbar; nimirum Tubingensium critices originem, indolem atque effectum describere, et quae ad illos refutandos prolata fuerint, referre in animo habebam, adeo ut referentis magis quam dijudicantis partes agerem. Quum autem mox praecipuam hujus argumenti partem per tractatam viderem egregia disputatione Viri Vener. D. Harting: de rigting der Tubingsche Godgeleerde school in eenige hoofdstrekken geschetst in diario: Jaarboeken voor wetensch. Theol. T. V. P. 2, pag 242—326; quaestionem indagare mihi proposui, cuius sumnum est momentum in dijudicanda Tubingensium critica: utrum fides sit habenda Lueae, consensum Petri atque Jacobi cum Paulo in Apostolorum conventu (Act. cap. XV) referenti, an vero ab ipso Paulo mendacii arguatur? Postquam igitur, critica disquisitione

in diario: die Zukunft der Kirche 1847 Fascic. 9 et 10 et Schwanbeek in libro diss. p. 3 laud., et inter nostrates Vener. G. W. Stemler, Proeve van antwoord op de vraag: of de door Justinus, den martelaar, vermelde gedenkwaardigheden der Apostelen onze kanonieke Evangelien zijn? in diario: Jaarb. v. wet. Theol. VI. 1, pag. 1—77 et 2, pag. 243—300. Doct. Joh. van Vloten de Tubinger school en hare Hollandsche tegenstanders. Historische aanteekeningen omtrent de wording des Kristendoms. Amersfoort 1848.

instituta, persuasum mihi habui, Lucae hac in re fidem historicam confirmari, haud dubitavi disputationem meam ita instituere, ut continuo appareret, me tamquam historici apologetam prodire.

De momento autem propositae quaestionis imprimis in dijudicanda sententia Tubingensium de dissensu Paulum inter atque reliquos Apostolos, cui tota illorum critica innititur, non est quod nunc disseram; de eo enim nec dubitare possunt Theologi, quicunque hujus criticis aliquam notitiam adepti sunt, et in ipsa disquisitione iteratis vicibus illud indicandi opportunitas erit.

Ita nunc demum in lucem prodit haec qualiscunque disputatio, serius profecto quam ipse, quum illam conscriberem, cogitaveram; ineunte enim anno ad Sacrorum Antistitis munus obeundum vocatus, gravissimi muneris curis impediebar, quominus continuo edendae disputationi tempus impenderem; ut autem inter medias hasce curas tamen prodire posset, effecit Promotoris aestumatissimi, praceptoris carissimi benevolentia atque auxilium. Quod si in hoc specimine quid recte monerim, illud Lector acceptum referat Praceptoribus, quorum egregia institutione gavisus sum. Vobis igitur, Viri

*Clarissimi, quos laudibus celebrare hujus loci non est,
hasce in Theologia primitias modeste dicat gratus dis-
cipuli animus; illud enim Vobis jucundissimum semper
fuit grati animi pignus, quoties in discipulis veri in-
dagandi atque cognoscendi amorem Vestra institutione
excitatum, neque frustra regiam viam vestris consiliis,
monitis atque exemplo indicatam animadvertis.*

DISPUTATIONIS CONSPECTUS.

	Pag.
§ 1. <i>Praemonenda</i>	1.
§ 2. <i>Pauli in Epistolae ad Galatas duobus prioribus capitibus argumentatio breviter exponitur</i>	4.
§ 3. <i>Comparatur Pauli iter, a Luca Actuum Capite XV descriptum, cum Pauli descriptione in epistola ad Galatas Capite II</i>	9.
§ 4. <i>Quando Paulus primum Galatiae urbes adierit et ecclesias in Galatiae regione condiderit, inquiritur</i>	21.
§ 5. <i>Quando probabiliter conscripta sit epistola ad Galatas e disputatis concluditur</i>	37.
§ 6. <i>Quodnam iter a Paulo in epistola ad Galatas probabiliter spectetur, indagatur</i>	40.
§ 7. <i>Duplex tollitur controversia, quae obstare videtur sententiae, qua iter, a Paulo epist. ad Gal. II: 1 et a Luca Act. XI: 30 memoratum, idem esse habetur</i> ...	46.
§ 8. <i>Pauli atque Petri altercationi, Gal. II: 11 memoratae, e proposita sententia lux affertur</i>	64.
§ 9. <i>Brevi conspectu indicatur, quam apte, nostrae sententiae convenienter, omnia explicentur, adeo ut ea, quae Lucas resert in Actibus et Paulus in Epistola ad Gal., se invicem suppleant atque illustrent</i>	68.

	Pag.
§ 10. Quomodo <i>Pauli</i> doctrinae, in Ecclesia primaeva contra errores, e Judaica religione oriundos, certanti, sensim victoria parata sit, ostenditur.....	70.
§ 11. Quomodo et mutata deinceps, testantibus reliquis <i>Pauli</i> Epistolis, certaminis facies, et ipsa <i>Pauli</i> docendi agendum ratio valeant ad <i>Lucae</i> in referendo decreto Hieros. fidem historicam stabilendam exponitur	80.
§ 12. Dubitatio ex epistolis ad Corinthios contra <i>Lucae</i> , decreatum Hieros. referentis, fidem historicam.....	95.
§ 13. Ut solvatur mota dubitatio, in Ecclesiae Corinthiae conditionem, maxime in partium ibi vigentium indolem inquiritur	97.
Epilogus.....	145.

VINDICATUR LUCAE, APOSTOLORUM CONVENTUM,
HIEROSOLYMIS HABITUM, ACTUUM APOSTOLI-
CORUM CAPITE XV REFERENTIS, CONTRA
RECENTISSIMAS DUBITATIONES FIDES
HISTORICA.

§ 1.

Praemonenda ¹⁾.

Jure suo cl. Baur ²⁾ in dijudicanda Actuum Apostolicorum historica fide, Paulum ipsum, fata

1) Cohors fere datur auctorum, qui de quaestione proposita disputarunt, quorum nomina si quis scire cupiat, adeat Winer, *Comment. ad Pauli ad Gal. Ep.* in *Exc.* II de itinere Pauli hierosolymitano, cuius mentio fit cap. II v. 1. p. 150 sqq. Schott, *Comment. in ep. ad Gal.* Prolegg. p. 301 sqq. De Wette, *Kurze Erkl. des Br. an d. Gal. und der Br. a. d. Thess.* p. 21 sq. — Griesbachius etiam iis annumerandus est, qui censeant Paulum ante conscriptam Ep. ad Gal. bis tantum Hierosolyma profectum fuisse. Vidd. ejus *lectiones Hermen.*, a Steinero edd. p. 139.

2) F. Ch. Baur in opere: *Paulus, der Apostel Jesu Christi, sein Leben und Wirken, seine Briefe und seine Lehre. Ein Beitrag zur kritischen Geschichte des Urchristenthums*, pag. 104 seqq. coll. Doct. Alb. Schwegler: *das nachapostolische Zeitalter in der Hauptmomenten seiner Entwicklung*. Tübingen 1846. II. pag. 106 seqq.

narrantem, testem facit; quodsi Pauli testimonium Actuum scriptorem mendacii arguerit, justus judex mendacem historicum damnet, et quisque aequus patronus ab injusta caussa tuenda desistat. Accuratissimam autem suae vitae notitiam dedit Paulus in duobus prioribus Epistolae ad Galatas capitibus; ad haec igitur prae cacteris provocandum, et inde haustae historicae notitiae normam veritatis constituent. — Veram justamque esse talem argumentationem haud facile quis negaverit, neque est sane, quod aliquid ab hujus judicij aequitate detrahatur, vel sic tamen antequam judicium cum Bauro suscipimus, in memoriam ei revocanda sunt, quae et alibi et hic in audiendis testibus et ponderandis horum effatis aut oblitus fuisse aut saltem haud semper satis attendisse videtur. Ac *primum* quidem, antequam judex in judicio cuiuslibet testis vel etiam rei effata justo pretio aestimat, sciat necesse est, utrum testis ille vel reus praesens affuerit iis, quae narrat, necne; quod si quis se iis, quae narrat, haud affuisse declaraverit, injustum dicimus judicem, qui nunc suspicionis tormentis hunc tradat, quoties alter, qui eorum, quae narrat, testem oculatum sese declaravit, aut ipse ea gessit talia addat, quorum absens testis nullam faciat mentionem¹⁾. Paulus in Epistola ad Galatas ea narrat, quae ipse egit, quibusque praesens affuit;

1) Hoe universe dictum sit de arguento, q. d., *e silentio* dictum, quo hodierni Critici adeo gaudent; periculoso sane illo atque saepius iniquo, cupide autem a plerisque arrepto, quum conjecturis vastum campum aperiat, in quo Criticorum acumen de praemio decertare possit.

Lucas autem ea, de quibus nobis quaestio est, ex aliorum testimoniis petere debuit; quodsi enim deinceps pro Pauli in itineribus comite haberi potest ¹⁾, eo certe tempore, quo haec peracta sunt, Paulum non comitatus fuit. Postulat ergo aequitas, ne e silentio in enarrandis rebus ante illud tempus actis, quarum notitiam e Pauli ore adipiscimur, continuo malam fidem de Luca suspicemur; imo judicis est inquirere, undenam ea, quae tradit, hauserit, et quaenam silentii caussa sit. Aliis verbis: Criticus, si hoc nomine dignus habebitur, in dijudicandis scriptis, quibus res narrantur, quas auctor nec ipse peregit, nec praesens adspexit aut audivit, ante omnia rerum narratarum primarios fontes indaget; ita quidem, ut primum ipsum auctorem interroget, num hic fortasse fontium, unde hauserit, indicium praebeat: dein, hoc tacente, varias scripti partes accurate et singulatim examinet et inter se comparet, ut ita e variarum partium diverso argumento, inde, ac forma probabile de fontibus judicium ferat; hoc demum opere peracto, de scriptoris fide historica sententiam ferre licet ²⁾. — Dein, ubi e diversis scriptis testimonia petimus, et scripti indoles et scriptoris consilium atten-

1) Ut plerumque e mutata tertia in primam personam pluralis numeri Cap. XVI vs. 10 efficiunt, quod tamen merito in dubium vocatur.

2) Egregiam hac in re operam praestiterunt J. C. Richm.,
Diss. Critico-Theol. inaug. de fontibus Actuum Apostolicorum.
Traj. ad Rhen. 1821, et nuperrime E. A. Schwanbeck, *ueber die Quellen der Schriften des Lukas*, erster Band, ueber die Quellen der Apostelgeschichte. Darmstadt 1847.

denda sunt, *et eorum*, ad quos scriptum est, ratio habenda est. Sic enim, ut e loco, de quo videndum nobis erit, exempla afferam, apologeta multa memorabit, quae historico, etiamsi ipsi haud ignota, vix memoratu digna videantur; in epistola plurima invenies, quae historicus parum curet, neque Theophilo omnia narranda erunt, quae Galatis suiscribat Paulus, et contra. *Tandem* etiamsi magni pretii esse in tali judicio eos locos concedimus, quibus *de industria* auctor rerum gestarum habitum atque ordinem proponat, majoris etiam eos esse contendimus, quibus, *veluti nolens* atque *fortuito*, inquirenti historicas notitias praebeat, ad quas, veluti ad lapidem Lydium alterius effata exigantur, illumque demum aequum judicem dicimus, qui, omnibus hisce subtilioribus ac fortuitis notitiis accurate inquisitis, judicium ferat ¹⁾.

§ 2.

Pauli in Epistolae ad Galatas duobus prioribus capitibus argumentatio breviter exponitur.

Hisce universe praemonitis ad ipsam quaestionem

1) Merito W. Paley notitias illas, quas dicit: »undesigned coincidences, circuitous references“ maximi fecit in *Horis Pauliniis* (vers. Belg. anni 1792, p. 9), quibus inquirendis egregia multa docuit; qua in re summum virum laudabiliter secuti sunt, praeter alios, H. Böttger, *Beiträge zur historisch-kritischen Einleitung in die Paulinischen Briefe*. Göttingen 1837 et 1838, et nuperrime Is. da Costa, *Paulus*, eene *Schriftbeschouwing*. 1846 seq. II Voll.

accedamus. — Quum Paulinis epistolis plerisque certe, ansam dederint rerum *περιστάσις* in ecclesiis sive ab ipso Paulo conditis, seu quarum notitiam per aliorum nuntios fecerat ¹⁾, Paulinam argumentationem intelligere cupienti ecclesiarum, ad quas scriptae sunt epistolae, conditio prae caeteris attendenda est. In Galatiae igitur Ecclesiis nonnulli (*τινές* I: 7) surrexerant ²⁾, qui post Pauli abitum recenter conversos turbabant aliamque doctrinam Galatis commendabant (*ἐτερον εὐαγγέλιον* I: 6, 7), ita quidem, ut prorsus inexpectate a Paulina doctrina deficerent Galatae (I: 6; III: 1, 3; IV: 9-11, 21. V: 1 sqq. 7), iidem illi, qui antea

1) Valet hoc de epistola ad Romanos, quam a Tholückio inde, (*Ausl. d. Br. P. an die Röm.*, dritte verb. Aufl. 1831) summi interpres de Wette, Olshausen, Kölner, Glöckler, Reiche, Fritzsche, ali tuiti sunt sententiam, qua Paulus in Ep. ad Rom. ecclesiae Romanae conditionem non respexerit, sed *dogmaticam* doctrinae sua expositioem tradiderit, merito oppugnavit et acute refellit Baur (*Abhdlg. über Zweck u. Veranschaltung des Römerbriefs*, in *Tüb. Zeitschr. für Theol.* 1836. P. III. p. 54 sqq. et *Paulus*, p. 332 sqq.); epistolae ad Galatas *polemicas* magis, ad Romanos magis *catecheticas* indolem esse (cf. da Costa, l. l. p. 342) ideo non negamus, catechesi autem huic Paulinae ipsius ecclesiae Romanae conditio ansam dederat, cuius notitiam Paulus iis debuit, qui tempore Cladianae persecutionis Româ in Graeciam cesserant, inter quos Aquilae imprimis et Priscillae consuetudine familiariter usus fuerat, quod cum tempore, quo epistola scripta habetur, egregie convenit. Cf. Paley, l. l. p. 26 sqq.

2) Eos peregrinos fuisse, qui aliunde Galatiae ecclesias adierint, nescio unde petat Baurus, l. l. p. 253; *ψηυδαθέλφους* illis (*C. II: 4*), qui Hierosolyma venerant, eosdem fuisse cum iis, qui Galatiae ecclesias turbabant, neque probari potest neque veri speciem habet.

Paulum nimio adeo ardore exceperant (IV: 14 sqq.). — Judaizantes fuisse Galatiae illos doctores, suadente totius epistolae argumento, non est quod dubitemus; eosque id imprimis voluisse, ut omnes omnino, tam qui e Judaeis quam qui e Gentibus ad sacra Christiana transierant, externa legis Mosaicae praecepta observarent, veluti quibus dierum sacerorum, noviluniorum, temporum statorum, annorum jubilarium, circumcisionis imprimis observatio praeciperetur, disertis Pauli indicis probatur (IV: 10. V: 2, 11). — Ut Galatas a Pauli doctrina avocarent, et divinam ejus auctoritatem negabant, et ad caeterorum Apostolorum doctrinam provocabant¹); quin etiam, ut videtur, ipsum Paulum nunc sententiam suam mutasse contendebant²). Contra hos igi-

1) Hoc inde officia, quod Paulus Cap. II imprimis ostendit, caeteros Apostolos, Hierosolymis habitantes (*οἱ θονοῦντες*), in iisque praesertim Jacobum, Petrum et Johannem (*οἱ θονοῦντες σεβλοι εἴραι*) nihil suaे doctrinae opposuisse; et, ut mihi quidem videtur, catenùs merito ad caeteros Apostolos provocabant Galatiae doctores, quatenus hi revera olim, utpote a Judacorum opinib⁹ non continuo liberi, his legis praeceptis obsecuti fuerint; hinc Paulus, narrans, quale judicium nuper Hierosolymis de ipsius doctrina tulerint Apostoli, adversarios respiciens eosque veluti occupans, in parenthesi addit: ἀποστόλι ποτε ἡσαν (attendatur imprimis imperfecti significatio) οὐδέποτε μοι διηγέρει τιquales demum (vel olim, cf. Wineri *comment.*) fuerint, nihil mea refert." Falsos doctores universe caeterorum Apostolorum auctoritatem praetexisse suadet etiam factionum in Corinthiorum ecclesia ratio; cf. Act. XV: 1, 2 et 24.

2) Probabiliter hoc officia ex iis, quae leguntur C. V; postquam Paulus et divinam doctrinæ suæ auctoritatem tuitus est C. I, et caeterorum Apostolorum judicium suamque erga hosce

tur Paulus provocat ad tempora illa omnibus nota ante suam conversionem, quum acerrimus majorum traditionum propugnator Dei ecclesiam persecutus et populabatur; tum ad conversionem, qua a Deo ipso patefactum sibi esse Eius Filium affirmat, quem inter gentes annuntiaret (I: 13 – 16); ut autem probet, se non ab homine qualicunque Evangelium suum accepisse, enarrat quae continuo post suam conversionem peregerat, diserteque negat se tunc Hierosolyma ad reliquos Apostolorum profectum esse (I: 17); tribus autem demum annis post se Hierosolyma adiisse ad Petrum visendum; atque tunc, quindecim diebus cum eo consumtis, alium Apostolorum se non vidisse, nisi Jacobum fratrem Domini (vs. 18, 19). Ex hoc itinere iisque quae tunc Hierosolymis acta erant, in Pauli defensione omnia pendent; unde, hoc itinere memorato, solemniter se vera scripsisse profitetur: *ἀ δὲ γράψω ἑμῖν, οὐδον̄ ἐνώπιον τοῦ Θεοῦ, ὅτι οὐ ψεύδομαι.* Frustra igitur nonnulli contendunt, Paulum ex iis, quae deinceps Hierosolyma suscepit, itineribus nullum omittere potuisse; etenim, simulac ipse Apostolus

agendi rationem exposuit C. II atque Capp. III et IV suam ipsius doctrinam proposuit et probavit; C. V concludit, Galatis ideo persistendum esse in libertate a Christo allata; hanc autem doctrinae suae expositionem et probationem a Paulo institutam esse, ut et Gulatis suaderet se sententiam suam non mutasse et ita adversariorum figmentum disjiceret, suadent verba illa continuo apposita: *ἰδέ, ἐγώ Παῦλος λέγω ἑμῖν, ὅτι, ἐάν κ. τ. λ.... μηδεπομέ σὲ πάλιν* (V: 2, 3) et *ἐγώ δὲ, ἀδελφοί, εἰ περὶ τοῦ μὴν ἔτι καὶ γράψωσα, τι ἔτι διώκομαι* (v. 11); v. 8 *τὴν πεισμὸν* de Galatarum credulitate intelligerem, qua falsorum doctrinum figmento fidem habuerant.

inter gentes doctrinam suam, a nullo Apostolorum acceptam, annuntiaverat, nihil intererat, utrum deinceps etiam Hierosolyma adierit, neque in malae fidei suspicionem incurrebat, aut auctoritatis suae defensioni minus prospiciebat Apostolus, iter postea susceptum omittens. Quodsi ergo iter, *Gal. I: 18* memoratum, convenit cum itinere, cuius in *Actis IX: 26* mentio fit, potuit omnino Paulus iter a *Luca* (*Act. XI: 30. XII: 25*) memoratum silentio praeterire ¹⁾. Nunc autem illud quaerebatur, quale judicium caeteri Apostoli de Pauli doctrina tulerint, unde Paulus sponte ad alterius, quam adversarii movebant, objectionis refutationem deducebatur; illudque iter ipsi memorandum erat, quo cum caeteris Apostolis de doctrina sua egerat. Huc igitur altero capite pergit Apostolus, memorato itinere, quod, interjectis quatuordecim amis (sive a conversione inde seu a primo itinere ²⁾), Hierosolyma suscepit; hoc autem iter tertium esse *potest* ³⁾, nisi in secundo itinere jam hac de re actum fuisse probari possit, quod, quum haud possit ex iis, quae tradit Lucas (*Act. XI: 30 et XII: 25*), nihil adhuc nos impedit, quominus ponamus iter *Gal. II: 1* seqq. idem esse ac tertium iter, a *Luca* *Act.*

1) Ideo non nego, verisimilius esse, Paulum nullum iter omisisse, uti postea videbimus; h. l. unice argumentum a Keilio aliisque inde ductum praecidimus.

2) De Chronologia deinceps videndum erit.

3) Adverbium *πάλιν* huic sententiae non obstare concedunt hodie omnes, et qui contendunt propter contextum h. l. *πάλιν* idem valere ac *δεύτερον*, hos modo spectata Paulinæ argumentationis ratio satis refutat.

XV memorato. Paulinae igitur atque Lucanae descriptionis inter se comparatio dubiam adhuc rem discernat necesse est, eaque, quae ex hac comparatione contulerimus, antequam rem dijudicamus, cum totius epistolae argumentatione componenda erunt.

§ 3.

*Comparatur Pauli iter, a Luca Actuum Capite XV
descriptum, cum Pauli descriptione in epistola
ad Galatas Capite II.*

Lucas nonnullorum e Judaea Antiochiam adventum itineris *ansam* dedisse dicit. Quoniam enim hi turbas in ecclesia Antiochena excitaverant docendo: ὅτι ζῶν μὴ περιέμνησθε τῷ ζῆτει Μωϋσέως, οὐ δύνασθε σωθῆναι¹⁾), quorum doctrinae Paulus et Barnabas sese opponebant, ecclesia Antiochena, crescentibus litibus, Paulum et Barnabam et alios quosdam ecclesiae socios²⁾ Hierosolyma ad Apostolos et Presbyteros vocavit, ut hac de quaestione agerent. Disserte igitur a Luca hujus itineris consilium, seu, ut ita dicam, *argumentum* fuisse dicitur quaestio de cir-

1) Miror Winerum, l. l. p. 160 in tabula, qua «mira rerum, quae Act. 15 et Gal. 2 narrantur, similitudo» exhibetur, hos, qui Antiochiam e Judaea venerant, componere cum credentibus, e Pharisaeorum secta v. 5 memoratis, horum vero utroremque cum παρεισάκτοις φευδαδέλφοις Gal. II: 4 similitudinem contendere.

2) Ex ecclesiae sociis fuisse τινάς ἄλλους ἐξ αὐτῶν non est quod dubitemus, nec audiendus est C. F. A. Fritzsche (in Fritzschiorum *Opusculis Academicis* Lips. 1833, p. 221) αὐτῶν referens ad adversarios, qui e Judaea advenerant: contrarium enim docet vox ἄλλους.

cumcisione (*Act. XV*: 1, 2). — Paulus se iter suscepisse dicit cum Barnaba, una assumto Tito, divino impulsu mouitu (*πατέρε αποκάλυψιν*)¹⁾; neque itineris consilium diserte indicat, sed potius enarrat quae Hierosolymis tunc peregit. — Negari vix possit, *ἀποκάλυψιν*, quae Paulo contigit, cum Antiochenae ecclesiae mandato conjungi, et »utrumque conciliari posse, nisi statuas, ad hanc Antiochenorum accessisse etiam divinam auctoritatem, eaque effectum esse, ut Paulus ecclesiae Antiochenae precibus cederet²⁾,” (potius: ecclesiae mandato obsequeretur *εταξαν*, et *προπεμφθέντες* *ὑπὸ τῆς ἐκκλησίας* *Act. XV*: 2, 3); at vero, ubi tenemus, Paulum in nostra Epistola tales adversarios oppugnare, qui alind Evangelium Galatis commendarent, quo etiamnunc legi Mosaicae et quidem diserte circumcisioni eos adstrictos esse docerent, mirum profecto cuique videbitur, a Paulo itineris ansam, et, si Lucae fidem habes, definite propositum consilium haud indicari. — Videamus igitur quaenam Paulus Hierosolymis se peregrisse testetur. Ecclesiae Hierosolymitanae sociis³⁾ evangelium suum sive doctrinam, quam inter gentes tradebat⁴⁾, exposuit, pri-

1) Cf. Winer et de Wette, in *Commentt. ad h. l.*

2) Sunt Wineri verba I. l. p. 54.

3) *ἀρθρητική εἰσαγωγή*, cf. Winer, *Gramm. des neut. Sprachidioms*. Ed. 5. p. 646.

4) *εὐαγγέλιον* in Epistola ad Galatas C. I: 11, 12, uti et nostro loco, minus historico, quam potius dogmatico sensu accipendum esse, »so dass es nicht die Notiz von den einzelnen Reden und Handlungen Jesu, sondern die tiefe Einsicht in die Bedeutung und Wirkung derjenigen allgemein bekannten Hauptthatsachen seines Lebens bedeutet, auf welche sich die Erlösung gründet,”

vatim autem iis, qui auctoritate prae caeteris florebant ¹⁾, ne frustra curreret aut eucurrisset ²⁾; cui expositioni nihil opposuerunt illi principes ³⁾, contra autem quum intellexissent, (ex iis nimirum, quae Paulus iis exposuerat, et e rerum prospere ab ipso

vere observat Heinrich W. J. Thiersch, *Versuch zur Herstellung des historischen Standpunkts für die Kritik der neuesten Schriften*. Erlabg. 1845. p. 141. Pauli adversarios Christum quoque praedicasse haud dubium est, sed Christi morte legis Mosaicæ auctoritatem sublatam esse negabant vid. *Gal.* V: 11, VI: 12 sq. coll. III: 10 sq.

1) *τοὺς δοκοῦντας* (vs. 2 et 6) significari Jacobum, Cepham et Johannem vs. 9) omnes affirmant interpres. Dubito autem an repte. Ecclesiae Hierosolymitanae principes, (*οἱ δοκοῦντες εἴραι τι*), ex iis, quae Paulus de prospero rerum suarum successu narraverat, ejus auctoritatem agnoscebant; inter eos autem triumviris (*οἱ δοκοῦντες στύλοι εἴραι*) nota erat peculiaris gratia Paulo a Deo concessa; vel sic tamen illud *δέξιας ἔθωκαν* non unice ad *τοὺς δοκοῦντας στύλους εἴραι* refertur, sed etiam ad *τοὺς δοκοῦντας εἴραι τι*, quorum partem constitnunt *οἱ δοκοῦντες στύλοι εἴραι*; a genere, ut ita dicam, ad speciem descendit Apostolus.

2) Duplicem doctrinae expositionem obtinuisse, alteram universae ecclesiae sociis, alteram scorsim principibus, simplex verborum interpretatione suadet, neque intelligo qui Bauer, l. l. p. 117, scribere potuerit: »de Wette, welcher Gal. 2, 2 gleichfalls zwei verschiedene Mittheilungen annimmt, weiss ans der Stelle selbst keinen Grund dafür anzuführen,“ quum certo pro sua interpretatione haud facile e loci habitu argumentum petere possit, praecepsibus Chrysostomo aliisque, interpretans: »Ich reiste nach Jerusalem, um mein Evangelium den Mitgliedern der dortigen Gemeinde vorzulegen, und zwar wandte ich mich speciell..... an die vorzugsweise Geltenden.“

3) *προσαντέλευτο* (vs. 6) cum *ἀνεθέμην* (vs. 2) conferendum esse duco; *corrigendi* notio, quam praefert Winerus, non procul hinc abest.

gestarum narratione), Paulo praeputiatorum pariter ac Petro circumcisorum Evangelium concreditum esse, (quum idem ille Deus, qui Petro ad munus ejus obeundum efficaciter vires suppeditabat, Paulo quoque praesens aderat), et quum cognovissent gratiam Paulo concessam Jacobus et Cephas et Johannes, qui ecclesiae columnae habebantur, Paulo atque Barnabae communionis dextras porrexerunt, ut illi gentibus, ipsi vero circumcisionis Evangelium annuntiarent; addito tamen hoc uno, ut Paulus et Barnabas panperum memores essent¹). Itaque dicit Paulus ecclesiac Hierosolymitanae principes, et inter hos triumviros primarios unam caussam secum atque cum Barnaba agere constituisse, munere tamen bipartito, ita ut hi inter gentes, inter Judaeos illi operam navarent, quod quomodo intelligendum sit illustratur, addito: μόνον τῶν πτωγῶν ἵνα μηδ μονεύωμεν· quum nempe egenis hisce intelligentur Hierosolymitanae ecclesiae, vel ecclesiarum in Iudea socii²), et hoc unum sit, quod a bipartita hac distinctione excipiatur et Apostolis εἰς τὰ ἔθνη mandetur, certo apparet divisionem hanc εἰς τὰ ἔθνη et εἰς τὴν περιτομὴν geographicam esse, qua gentium regiones a Palaestina distinguuntur, neque igitur eos audiendos esse, qui hujus loci auctoritate nisi in Actuum Apostolicorum auctorem suspicionem commoveant, quoties Paulus, in gentium regionibus versans, in Ju-

1) μόνον... ἵνα, illud ἵνα pariter ac prius ἵνα cum δεξιάς ἔθωκαν κ. τ. λ. jungendum esse, neque opus esse ut αἰτοῦντες vel παραπλανητες suppleamus, vere monet de Wette, ad h. l.

2) *Act. XI: 29 τοῖς κατοικοῦσιν ἐν τῇ Ἰουδαϊᾳ ἀδελφοῖς.*
Cff. *1 Cor. XVI: 1; 2 Cor. VIII; Rom. XV: 26; Act. XXIV: 17.*

daeorum synagogis evangelium annuntiat. Praeter hanc doctrinae suae expositionem Paulus de Tito, comite suo, affirmat, hunc quamvis Graeca stirpe, non coactum fuisse ad circumcisionem suscipiendam, et hoc quidem¹⁾ propter falsos fratres clam introductos, (qui se insinuaverant), quippe qui furtim irrepsissent, libertatem, qua Paulus utebatur una cum suis in Jesu Christo (cujus Christus auctor ac veluti fons erat Cap. V: v. 1) speculaturi, eosque denuo legis servituti addicere coepientes; his vero, affirmat Paulus, se suosque socios ne unius quidem horae spatio obsequio cessisse, ut evangelii inter gentes praedicati veritas incorrupta maneret²⁾. — Si quid video, ex hac de Tito digressione apparet, quaenam tunc fuerit Apostolorum, qui

1) Recte verba διὰ δὲ τοὺς παρ. κ. τ. λ. ita interpretari videatur de Wette, ad h. l. Caeterum merito absurdam esse illam interpretationem, qua, praeeunte Tertulliano c. Marc. V: 3, nonnulli e recentioribus, ipse, quod miror, Rückertus post διὰ δὲ — ψευδαιδέλφους supplet περιερμήθη contendit Baur, I. l. p. 122; vs. 5 in vulgata lectione nihil mutandum esse pro certo habemus. Cf. J. J. Doedes, Verh. over de Tekst-kritiek des N. V., in Teijlcri-Godgel. Genootsch. 1844. T. XXXIV, p. 447 seq.

2) Interpretatio, qua verba ἀπὸ δὲ τῶν δοκοῦντων per anacoluthon explicantur, ita ut cogitaverit Apostolus οὐδὲν παρέλαβον, vel οὐδὲν μοι προσανετέθη, a quo tamen deducitur interjecta parenthesi ad occupandam adversariorum objectionem, quum mutata constructione sententiam suam recipiat: εμοι γάρ οἱ δοκ. haec, inquam, interpretatio caeteris probabilius mihi videtur; cf. de Wette, ad h. l. et auctores ab eo laudati. Ab hoc vs. 6 Paulus recipit ea, quae de evangelii sui expositione tradere ipsi in animo erat, quaeque vs. 2 deseruerat, inserta vs. 3, 5 digressione de Tito; particula δέ saepius recipiendae interruptae cogitatorum seriei. Cf. Winer, Gramm. p. 52.

Hierosolymis erant, de circumcisione sententia; propter se quidem haud improbabant praeputiati circumcisionem¹⁾, nunc vero, ubi falsi isti fratres irrepserant, eam minime urgebant; Paulus contra firmiter constanterque praeputiatorum circumcisionem oppugnabat et solemnitate Ethnico-Christianis declarabat: *ἰδὲ ἡγώ Πάῦλος λέγω ὑμῖν, ὅτι εἰς τὸ περιτέμνησθε, Χριστὸς ὑμᾶς οὐδὲν ὀφελήσει, περιπλανώμενος διὰ τοῦτο τὸν πόνον τοῦτον οὐδὲν οὐδὲν αὐτῷ συμβάνει.* perspiciens legis circumcisionis que ad salutem necessitatem Evangelium irritum reddere, et Judaismi de Christiana religione victoriam

1) Minus recte, ut videtur, C. F. A. Fritzsche, I. l. p. 180, vs. 3 ita interpretatur, ac si Hierosolymitani Apostoli optarint vel postularint, ut Titus Pauli comes circumsecaretur; horum autem consilio aut imperio morem non gesserit Titus, auctoribus Paulo et Barnaba; etenim, et, vere monente Wettio, ad h. l., apologetica Pauli argumentatio huius interpretationi obstat, neque verba eam tuentur; recte enim monet Fritzsche, particulis *ἀλλ' οὐδὲν αὐτῷ συμβάνει*, in gradatione collocari solitis, indicari; *silentio oblitterata re leviori afferri graviorem (ja nicht einmal —).*" Operte igitur jam indicat Paulus, quod vs. 6—9 diserte dicit, se Apostolorum iudicio non incassum (*εἴς κερδὸν*) laborare aut laboresse; quodsi jam in sequentibus quaedam gradatio insit, hic verborum sensus erit: *αὐτῷ συμβάνει*; at ne Titus quidem vocatus fuit ad circumcisionem suscipiendam, praesentibus tamen ipsis illis Apostolis, ad quorum auctoritatem provocabant Pauli adversarii; aliis verbis: Apostoli non urserunt Titi circumcisionem, et hoc quidem propter falsos istos fratres. Paulus, Barnabas et Titus acriter falsis fratribus restiterunt, ne ad horae quidem momentum obsequio, (quod falsi sodales, non Apostoli, flagitabant), iis cesserunt (*οὐδὲν αὐτῷ συμβάνει*); reliqui autem Apostoli sua auctoritate falsis istis solidibus auxilium hand praestiterunt, neutram partem secuti sunt. In Fritzschi interpretatione nulla apologeticae argumentationis gradatio cernitur; imo satis magnus illius regressus; Paulusque, affirmans Apostolos Titi circumcisionem vel optasse vel postulasse, dicendus esset ipse adversariis suis arma praebuisse.

parare; quod id temporis nondum perspiciebant reliqui Apostoli, qui praeputiatorum circumcisionem potius ad τὰ ἀδιάφορα referebant. Paulus igitur hoc loco in apologia contra falsos doctores, qui horum auctoritate nitebantur, opportune hac de Tito digressione docet, longe aliter Apostolos hac de re sentire atque illos, qui Galatiae ecclesias turbabant, legis servitute demum imposita, allatoque exemplo simul Galatis indicat, se Hierosolymis, praesentibus his ipsis Apostolis, acriter ejusdem generis legis Mosaicae patronis, quales nunc Galatiae ecclesias turbabant, restitisse, neque ipsos Apostolos hac in re sibi impedimento fuisse¹⁾.

Cum Paulina hacce relatione ea conferentes quae Actuum Cap. XV legimus, longe alia a Luca tradi

1) Baur, *Paulus* p. 121: »Man begreift,” inquit, »den so grossen Ernst, mit welchem der Apostel hier die Sache seines Evangeliums vertheidigt, erst dann recht, wenn er nicht blos mit den παρεῖσαντοι ψευδάδελφοι, sondern mit den Aposteln selbst zu thun hat.” et deinceps addit p. 122: »was nach der Apostelgeschichte unter dem bereitwilligsten Einverständniß der ältern Apostel zu stande kam, war nach der Versicherung des Apostels selbst nur das Resultat des kräftigsten Widerstands” (contra quos nam? secundum Paulum contra παρεῖσαντοις ψευδαδέλφοις), »der nachdrücklichsten Zurückweisung eines eben so ernstlich angesonnenen Zwangs.” Ita h. l. et alibi Baur eos permisces quo Paulus accurate distinguit: Apostolos (*τοὺς δοκοῦντας*) et falsos fratres; talia refutantur, dummodo textum graecum inspoxeris; neque sane tali auxilio indigemus, ut intelligamus, cur Paulus tam acriter contra ψευδαδέλφους causam suam tuitus sit; ex hac ipsa enim epistola apparet, quantum falsi ejusdem generis doctores inter Galatas Paulinie doctrinae nocuerint (I: 6, III: 1, 3, IV: 9—11, 21, V: 1 sq., 7); idemque Antiochiae obtinuisse, cum rei analogia suadet, tum Lucas confirmat (*Act. XV: 2*).

fatendum est; ne enim de aliis minoribus discriminis notis dicam, duo imprimis attendenda sunt, quae rem confidere mihi videntur. Ac *primum* quidem in Actibus quaestio de circumcisione in publica concione tractatur, quo non Apostoli tantum atque Presbyteri (vs. 6), sed caeteri etiam ecclesiae socii (v. 12 et 22) convenerant; Petrus et Jacobus ad dicendum surgunt et orationes habent, quibus suam sententiam aperiant atque comprobent, (7—11 et 13—21), omnibus ecclesiae sociis Barnabas et Paulus enarrant prosperum rerum suarum successum (v. 12), decernunt Apostoli Presbyteri omnesque Ecclesiae socii (v. 22) ut duum-viri, Judas atque Silas, una cum Paulo et Barnaba Antiochiam mittantur, et epistola iis mandatur, qua cum ecclesiis Antiochiae, in Syria et in Cilicia conditis, quid Hierosolymis actum sit, quidque decreverint Spiritus s. et ecclesiae socii, communicetur. Brevi omnia ita comparata sunt, ut haud injuria ab antiquissimo inde tempore primum Christianorum concilium a Luca hic describi statuerint 1).” *Deinde* vero ea considerantes, quae a Petro et Jacobo enuntiata et ab ecclesiae sociis decreta fuerunt de circumcisione,

1) Cf. Baur, I. l. pag. 118 seq., qui vere animadvertisit, Jacobum hic quodammodo praesidis munere fungi; in epistola quoque ad Gal. II: 9 Jacobo primae partes tribuantur. Cf. Paley, I. l. pag. 167 seqq. et Neander, *Geschichte der Pflanzung und Leitung der christl. Kirche durch die Apostel*, Edit. 2ae I. p. 146. Universe Jacobo primas in ecclesia partes tributas fuisse ante exornatam fabulam de Petri primatu vere docet A. Schwiegler, in diario *Theol. Jahrb.* von Dr. E. Zeller. 1846. I. *Polemisches und apologetisches gegen Dorner*, pag. 168 seq.

longe aliam Palaestinensium Apostolorum hac de re sententiam Lucas referunt atque Paulus. Quomodo enim aut Petri verba (v. 10): *νῦν οὖν τι πειράζεις τὸν Θεόν, ἐπιθεῖνας ζυγὸν ἐπὶ τὸν τραχηλὸν τῶν μαθητῶν, δύν οὔτε οἱ πατέρες ήμῶν, οὔτε γηεῖς ισχυσαμεν βαστάσαι;* aut Jacobi (v. 16): *διό ἐγώ ορίω μὴ παρενοχλεῖν τοῖς ἀπὸ τῶν ἔθνῶν ἐπιστρέφοντιν ἐπὶ τὸν Θεόν·* aut denique ea, quae in epistola leguntur, ubi ii, qui circumcisionem petunt, dicuntur (v. 24) *ἀνασκευάζειν* (avertere, perturbare) *τὰς ψυχὰς αὐτῶν,* atque deinde (v. 28): *ἔδοξε τῷ ἀγίῳ πνεύματι ναι γῆν μηδὲν πλέον ἐπιτίθεσθαι ὑμῖν βάρος.* quomodo, inquam, haec cum iis, quae ex epistola ad Galatas colliguntur, concinant, videant illi, qui utriusque loci harmoniam praedicant; caveant vero, ne vocabulorum sonis allicti res negligant, et ita nubem pro Junone amplectantur 1).

At vero, inquiunt 2), publica illa concio et privata colloquia facile conjungi possunt, dummodo haec illi praecessisse statuatur, neque mirandum, Paulum, antequam caussa in publica concione ageretur, privatim suam doctrinam caeteris Apostolis exposuisse. Haec ratiocinatio, recte monente Bauro 3), tum demum

1) Ita jam vere observavit Keilius in *commentat. de definiendo tempore Pauli itineris Hierosolymitani*, *Gal. II: 1, 2 commemorati, inserta Opusc. Acadd. a Goldhornio edit. 1821, p. 163*, quaecunque de Titi circumcisione in ep. ad Gal. legantur omnium haud dubie maxime in causa fuisse, cur de utroque loco invicem comparando cogitaretur."

2) Ita jam Henke, in *animadv. ad Paley, Hor. Paul.* p. 424 et Neander, I. I. I. pag. 154.

3) I. l. pag. 116.

vindicari posset, si Paulus in epistola sua eorum, quae in publica concione acta essent, mentionem fecisset¹⁾; Lucae vero *historico* privata illa colloquia silentio transire licuit, hujusque silentium continuo intelligitur e fontium, unde rerum privatuarum cognitio hauriatur, penurie. Paulus contra miserum sane *apologetam* sese praestitisset²⁾, si eos, qui Apostolorum caeterorum auctoritatem, ut Galatis circumcisionis necessitatem suaderent, praetexerant, ad certamen provocans, quaecunque vero in concilio Hierosol. acta erant, praetermittens, talia enarrasset, quibus *cum* Apostolos falsorum fratrum caussam tuitos fuisse negasse, *tum* eos a gentilium circumcisione non prorsus alienos esse probasse procul dubio videretur. — Quod vero alii animadverunt, Paulum in nostra epistola decreti Hierosol. nullam mentionem fecisse, id unum probat, Paulum ad caussam suam tuendam non humana auctoritate usum fuisse, sed sola suae ipsius doctrinae, quam a

1) Publicae concionis mentionem fieri, his verbis: ἀνέθεμην αὐτοῖς τὸ εὐαγγέλιον, negari vix potest; quibus tamen verbis nimium tribuitur, si propter haec convenientiam inter Paulinam atque Lucanam narrationem contendis, prouti Ebrardus fecit in diario: *Zukunft der Kirche*, I. l. p. 314 sq., qui in tota hac quaestione hand satis ad apologeticam Pauli argumentationem attendit.

2) Cf. Keil, I. l. pag. 354. Mirum hoc non attendisse de Wette, in *Comm.* pag. 23 scribens: »Während P., wie schon das *κατ' ἀποκάλ.* zeigt, Alles in Beziehung auf sich selbst und sein Verhältniss zu den App. in Jerus. und von die innern Seite (*κατ' ιδιαίς κτλ.* II: 2) betrachtet, so fasst Luk. die äussere Seite ins Auge;” quae ratio de duobus historicis procederet, hic vero de *historico et apologeta* agimus.

Deo acceperat, expositione adversarios suos convincere voluisse¹⁾; hoc ipso, de quo quaerimus, loco (*Gal.* II: 1—10), adversarios suos respiciens, diserte ea enuntiat, quae caeteri Apostoli de evangelio senserint. Ita — quid enim omnia referam? — alii alia diverticula quaesiverunt²⁾, iter

1) Ita Paley, *Hor. Paul.* (vers. belg.) p. 171. Henke, *Animadv. ad h. libr.* p. 428.

2) Ita v. c. Thiersch, *Versuch u. s. w.* p. 81 et 103 duplum caussam proponit, cur ea, quae *Act. XV* leguntur, a Paulo sileantur, vel „weil die Bestimmung dieses Documents (epistolae illius) noch eine rein gelegentliche, nicht die einer dauernden Satzung oder einer heiligen Urkunde war.“ Sed Paulus se hanc epistolam non unice Antiochenis tradidisse, sed in aliis etiam urbibus, veluti Derbac, Lystrac alibique hujuscet decreti observantiam commendasse, ipse docet *Act. XVI*: 4, et mirum foret, cum, in simili prorsus in Galatiae ecclesiis rerum conditione, hoc decretum neglexisse; vel illico a Paulo strictum tantum (scil. his verbis: ἐποιεὶς τὰς οὐδὲν προσαρέθεντα) decretum Hieros. memorari monet, quoniam eo tantum ea confirmabantur, quorum πρᾶξιν jam Paulus instituerat. Hoc quidem hand nego. Ubi vero falsi doctores hanc πρᾶξιν, quae Paulinae doctrinæ fundamento nititur, everttere studebant, caeterorum Apostolorum doctrinam et πρᾶξιν a Paulina diversam esse contendentes, nonne Paulus continuo eos facilius sane profligasset memoratis, quae secundum *Act. XV* Hierosolymis acts erant, quam iis quae nunc *Gal. II*: 1—19 de caeteris refert Apostolis? Paley, I. contra inter causas non memorati a Paulo decreti, refert etiam, Paulum in nostra ep. doctrinâ suâ de lege atque circumcisione exponenda (v. c. III: 10, V: 4 al.) ulteriori procedere, quam hoc ipsum decretum. Hoc sane recte vidit summus vir, dummodo inter caussas non retulisset, cur P. decretum non memoraverit; nonne ita ipse P. adversarii suis arma porrexisset? et quomodo explicaremus Pauli Hierosolymis agendi rationem iis, quae a caeteris Apostolis decernuntur, nihil opponentis, imo eorum observantiam postea variis ecclesiis commendantis, si mox ipse doctrinam suam hic propositam migrasset?

Gal. II: 1 sqq. commemoratum, tertiumque, *Act.* XV: 2 sqq. descriptum, idem esse statuentes. Lubenter vero, quum utriusque relationis comparatio de diversis itineribus cogitandum nobis esse suadeat, Pauli imprimis in epistola sua apologetae consideratio omnem dubitationem tollere videatur, subscribimus hisce **Bauri**¹⁾ verbis: »Wodurch konnten jene (judairende) Gegner, (welche den Christen der galatischen Gemeinde die Beschneidung als nothwendige Bedingung der Seligkeit aufdringen wollten) besser zurück gewiesen werden, als durch einen in Jerusalem selbst gefassten Beschluss, durch welchen die Beschneidung [der Heidenchristen] für ein ebenso unerträgliches als unnöthiges Joch erklärt worden war? Ja, man muss sogar sagen, dass es für den Apostel schlechthin nothwendig war, wenn er einmal auf jene Verhandlungen so speciell zurückging, in einem Falle, auf welchen sie so ganz ihre Anwendung fanden, einen solchen Beschluss nicht unerwähnt zu lassen. Er konnte ja davon gar nicht schweigen, ohne der Wahrheit der sache in einer Darstellung, welche gerade das Hauptmoment zurückhielt, und dem Recht, das er gegen seine Gegner geltend zu machen hatte, etwas zu vergeben.”

1) L. I. p. 134. — Quae **Baurus** de decreto tantum Hierosol. statuit, de omnibus valent, quae tunc secundum *Act.* XV Hierosolymis acta fuerunt; imprimis enim tenendum, falsos doctores, qui in Galatia erant, Palaestinensium apostolorum auctoritatem praetexuisse.

§ 4.

*Quando Paulus primum Galatiae urbes adierit
et ecclesias in Galatiae regione condiderit,
inquiritur.*

Ex hac nostra disputatione sequitur, non tantum ut iter, a Paulo *Gal.* II: 1 memoratum, cum tertio illo itinere (*Act. XV*) convenire negemus, verum etiam ut ipsam ad Galatas epistolam ante concilium Hierosolymitanum scriptam esse statuamus¹⁾. Quae quum scripta sit ecclesiis, ab ipso Paulo conditis (*IV: 13—19 coll. I: 6—8*)²⁾, quaeritur, utrum Paulus ante tertium, quod Hierosolyma suscepit iter, Galatiam adierit, necne³⁾.

1) Omnim' primus hoc docuit J. C. Fischerus, in libello *de tempore, quo epist. P. ad Gal. scripta fuerit*. Longosal. 1808, qui tamen sua e Keilii scholis exegeticis hausisse videtur, affirmante ipso Keilio. *de definiendo tempore, quo scripta esse censenda sit Pauli Ep. ad Gal.*, in *Opusc. Acad.* p. 352.

2) Dubia, quae primum moverat Köhlerus, *Abfassungszeit u. s. w.* p. 8, postea vero ipse retractaverat, in den Ann. der gesammten theol. Lüt. Jahrg. I. T. II. P. III., solvit Rückertus in *Comment.* p. 298 seq.

3) Paulum ante scriptam hanc epistolam *bis* Galatiae ecclesias adiisse haud opus est ut statuamus; frustra enim ad τὸ οὐρανόν *IV: 13* provocant. Cf. *Joh.* VI: 62, *IX: 8*, *I Tim. I: 13*, *Hebr. X: 32*, *I Petri I: 14*. Vidd. Keil, l. l. p. 362. Ulrich, ueber die Zeit p. *Abf. d. Gal. Br.* in diario: *Stud. u. Krit.* 1836, p. 459. Cf. da Costa, *Paulus I* p. 255. Neque igitur indigemus artificiosa Böttgeri interpretatione, quam, quodammodo praeēunte Keilio, l. l. p. 362, proposuit: *Beitr. III.* p. 9 seq., qua Paulus, priorem evangelii s. doctrinae expositionem *coram atque ore* factam his verbis: εἰ η γὰς λεισμένη ἐμὲν τὸ οὐρανόν *IV: 13* indicans, de altera

Paulum jam ante secundum iter, rei Christianae caussa cum Timotheo susceptum (Act. XVI), in Galatia fuisse, jam olim contenderunt Koppius¹⁾ et

coxitaverit, quam nunc, hac ipsa scripta epistola, dederit *οὐς τὰ λιγέστατα* IV: 19; errat enim vir clar. hoc ponens, quod huic argumentationi ansam dedit: »πρότερον setzt allerdings ein *λιγέστατα* voraus.“ Paulus, des Ap. P. Lehrbriefe an die Gal. Heidelb. 1831 p. 26 sq. alterum Pauli iter ingeniosius apud Lucam Act. XIV: 21 memoratum censem. — Contendit d. e. Wette, Comment. p. 2: »Auf diese zweite Anwesenheit bezieht sich sicherlich Gal. IV: 16 (auch wohl V: 21, quod tamen ex prioris loci interpretatione pendet; cf. idem l. l. p. 80); cur autem ἀληθεύων non de prima doctrinae expositione intelligi queat (p. 61), fateor me non satis intelligere; P. enim in tota hacce epist. adversarios spectat, aliud evangelium commendantes, unde de suo evangelio dicit: η ἀληθεία τοῦ εὐαγγελίου II: 5, 14 et simpliciter: η ἀληθεία V: 7 (coll. 2 Cor. VI: 7 ὁ λόγος τ. ἀληθείας, II: 2, 3, ὁ λόγος τοῦ Θεοῦ, η φανερώσις τῆς ἀληθείας τὸ εὐαγγέλιον ἡμῶν). Quidni ergo interpretetur ἀληθεύειν: verum hoc evangelium annuntiare? Imprimis quoniam e sequentibus (v. 17 seqq.) Paulum h. l. adversariis suis sese opponere patet. Totum locum a vs. 12 inde ita interpretor: vs. 12 dixerat γίνεσθε ὡς ἔγώ, ὅτι κάγκω ὡς ἴμετς (scil. γέγονα); thesin hanc nunc ita exponit, ut primum ostendat, quales Galatae erga se fuerint: οὐδέν με ἡδικήσατε — — — ἐδώκατε μοι. Quo exposito sequitur quaestio: nonne igitur ἔγώ γέγονα ὡς ὑμετς; quam ita enuntiat: ὅτε εἰχθός ὑμῶν γέγονα (= ἴμετς ἡδίκησα) ἀληθεύων ὑμῖν; Particula ὅτε utitur P., quoniam cogitabat de mutata erga se Galatarum benevolentia, quae non diserte enuntianda ei erat, quum jam e totius Epist. contextu satis pateret. Rogat autem ita P., ut negans responsum exspectetur; tunc vero vs. 17 veram mutati erga se animi caussam indicat non quaerendam in Paulo, veram doctrinam anuntiante, sed in falsis istis doctoribus, a quibus sedulo cavendum esse Galatas monet.

1) Proleg. ad Comment. p. 8, cui assentitur Hänlein, Einl. II. p. 397, 407.

Keilius¹⁾; primum enim statuunt nostram epistolam mentionem facere Barnabae, tamquam Galatis noti, quem tamen ante susceptum secundum hoc iter a Paulo discessisse novimus (*Act. XV*: 39); deinde iter illud, *Act. XVI* memoratum, dicunt a Paulo susceptum fuisse, ut ecclesias ante conditas confirmaret (*Act. XV*: 36, 41, *XVI*: 5); tandem, ad locum *Act. XIV*: 6 provocantes, τὴν περίχωρον (*Ἄντορας καὶ Αἴρης*) de Galatia intelligendam esse monent. Horum sententiam postea alii, uti Mynsterus²⁾, Paulus Heidelb.³⁾, et Böttgerus⁴⁾ ita tuiti sunt, ut Lycaoniae partes, tempore Pauli, cum Galatia proprie dicta ad unam Romanorum provinciam conjunctas, uniusque Praefectoris curae commissas fuisse probarent. Quid nobis hac de re videatur, exponamus.

Ac *primum* quidem nobis attendendum esse videtur ad duplicem in *Actibus* partem. Quodsi enim Pauli in Galatia praedicatio ante *Act. XV* accidit, illius mentio quaerenda erit in illa libri parte, quae permultas lacunas continet universeque in iis, quae Paulus egerit, parum accurate versatur, si unam illam Pauli cum Barnaba in Pisidiae atque Lycaoniae urbibus

1) *Opusc. Acad.* p. 359 sqq. Cf. etiam Ulrich, l. l. p. 356 sq.

2) *Einl. in d. Br. a. d. Gal.*, in ejus *klein. theolog. Schriftl.* Hafniae 1825 p. 65 sq.

3) *Heidelb. Jahrb.* 1827. p. 636 sqq., cui assentitur C. W. Nimeijer in *comm. de tempore, quo ep. ad Gal. conscripta sit* Hall. 1827.

4) *Beiträge u. s. w. Abth.* I § 8, 17 sq. Abth. III, § 1 sq. § 49 et *Zusätze z. ersten Abth.* p. 26 und *zur dritt. Abth.* p. 32 sqq.

praedicationem (Cap. XIII et XIV) excipias; contra autem si tertio itinere Hierosol. posterior fuit, in illam Actuum partem deducimur, quae longe accuratiorem rerum, a Paulo gestarum, descriptionem continet, quippe cuius, pro maxima certe parte, fontem constituisse videatur testis oculati, qui plerumque rerum gestarum socius fuerit, scriptum ¹⁾). Quod inter utramque libri partem discrimen, *quum* quoad res a Paulo gestas e sola epistolarum Paulinarum (*Gal.* I et II et 2 *Cor.* XI: 23—29) collatione jam luculenter apparet, *tum* etiam si ipsas illas partes inter se comparas et ad orationes Pauli attendis, singularis illa proportio observanda est, quam admissam in his referendis cernimus; a conversione enim ad tertium Pauli Hierosol. iter unam tantum notatam cernimus Pauli orationem (Act. XIII: 16 sqq.), *quum* post illud iter imprimis ab eo tempore, quo non intermissum oculati testis scriptum Lucae praesto fuit (XX: 5) decem fere Apostoli orationes consignatas habeamus ²⁾). Jam vero vulgaris sententiae fautores pri-

1) Notum est, quantis difficultatibus laboret vulgaris sententia, qua ipse Lucas iis, quae inde a Cap. XVI vs. 10 describit, praesens affuisse censeatur; cf. imprimis E. A. Schwanbeck in libro supra laudato p. 125—148, qui sententiam, qua Silae adversaria Actuum e variis scriptis compositorum scriptori in posteriore libri parte (inde ab *Act.* XV: 1, cuius tamen capitibus vs. 3—12 ad alium fontem refert), praesto fuerint ad summum probabilitatis gradum extulit, et ut difficultatem tolleret, quae e prima illa persona plur. (e. XVI: 10—18 et XX: 5 ad finem) in hanc sententiam movetur, nonnulla exempla collegit (l. l. p. 187 sqq.), quibus annexa haec fontes in suos usus adhibendi ratio illustratur.

2) Cf. Doct. Riehm, *dissert.* laud, p. 85.

mam Pauli inter Galatas praedicationem a Luca his verbis diserte memorari affirmant: διελθόντες δέ — τὴν Γαλατικὴν χώραν (XVI: 6), quae brevissima, vix hoc nomine digna, Paulinae, quae summi momenti fuit, in Galatia praedicationis commemoratione in accuratio illa Actuum parte haud facile ab illius sententiae patronis probabiliter explicabitur, et ita difficultatem praebet, quam plerumque justo minoris faciunt; haud minorem certe, ut nobis videtur, quam qua illorum sententiam claudicare monent, qui per verba: οὐαὶ τὴν περίχωρον, Galatiam vel potius Galatiae quasdam urbes intelligendas esse censem¹⁾.

Deinde ad rationem attentes, quam tam *Act. XVI: 6* quam *XVIII: 23* Galatia memoratur, in eo incidimus, quod utroque loco dicitur ἡ Γαλατικὴ χώρα, quum utroque loco Phrygia, Bithynia, Mysia simpliciter ἡ φρυγία²⁾ κ. τ. λ. dicantur. Talia interpretem ne fugiant eorumque caussam inquirat necesse est; probabilius enim certe est hujus rei caussam dari, quam ut fortuito factum hoc esse dicatur. Jam vero ad Galatiae historiam attentes³⁾, haec de ea comperta habemus: Amyntas ab Antonio Galatiam et Pamphylliae atque Lycaoniae partes accepit (aº 36 a. Chr. n.), quibus mox Pisidia addita est (aº 34 a. Chr. n.). Harum regionum rex fuit Amyntas, hujusque regnum

1) Hanc sententiam probabilem etiam dicit, praeter memoratos patronos, Borgerus in *interpret. Ep. ad Gal.* prol. p. 16.

2) Phrygiam (magham Phrygiam) impuberi regi Mithridati VI. (c. a. 115 a. Chr. n.) ademerant et in provinciae formam redegerant Romani. Cfr. Böttger l. l. Abth. I. p. 16.

3) Loca accurate citavit Böttger, ll. supra II.

confirmavit Augustus, additis Cilicia, (illa scil. Ciliciae parte, quae jam diu Romanorum provincia fuerat, ἡ τραχιῶτις Κιλικία) et Isauria; neque, quum post Actii pugnam variae provinciae in certam formam redigentur, Amyntae imperium mutatum est; hoc demum mortuo (aº 26 a. Chr. n.) Cilicia et Isauria Cappadociae junctae, et sub Tiberio, mortuo rege Archelao, hae tres regiones ad unam provinciam redactae sunt; Pamphyliae oppidis in libertatem restitutis reliquae hujus regni partes, Galatia proprie sic dicta, Lycaoniae pars ¹⁾ et Pisidia in unius provinciae, cui commune *Galatiae* nomen datum, formulam conjunctae sunt. Haec ubi tenemus non mirum esse potest, cur Lucas τὴν Γαλατικὴν χώραν dixerit; utroque enim loco communi nomine usus est, ut universe *Galatiae* provinciam, quam transierit Paulus, indicaret, tantumque abest ut »Lucas Derben et Lystrae oppida a Galatia accurate distinxerit *Act. XVI: 1, 6* et Lycaoniae adscriperit *XIV: 6*” ²⁾,

1) Utrum tota Lycaonia, an nonnulla tantum oppida hic intelligenda sint, dubitari possit. Dio Cassius enim LIII: 26 p. 514: καὶ οὐτω, inquit, καὶ ἡ Γαλατία μετὰ τῆς Ανησυχίας Πομακὸν ἀρχόντα ζοχεῖς de Amyntae autem regno loquens dixerat XLIX: 32 p. 411: ἐδοκει καὶ (scil. ὁ Ἀρτώνος) Ανησυχίας Παμφυλίας τέ τινα αἰτῷ προσθεῖς, sed Plinius, *Hist. nat.* V: 32, memoratis variis Galatiae urbium incolis (inter quos Lystreni), Galatiam attingere dicit Lycaoniae partem obigenem (meridionalem partem), unde sequitur partem Lycaoniae septentrionalem cum proprie dicta Galatia conjunctam fuisse. — Vidd. imprimis ea quae Böttger Rückerto opposuit l.l. *Zusätze* p. 32—38, ubi e Plinio atque Strabone probat, Lystram atque Derben et circumiacentia oppida a rege Amynta inde ad Galatiam pertinuisse.

2) Wineri verba *Comm.* p. 6; postremum verum, dummodo

ut potius prius, praecipuis urbibu nominatim significatis, quae memoratu digna Paulus in Galatia peregerit memorasse dein vero reliquarum regionum, in his etiam Galatiae provinciae, peragrationem enarrasse videatur. Quae peragratio, una cum Sila et Timotheo¹⁾ suscepta, festinanter peracta videtur, ut e Lu-

ne dicamus, Lucam, has urbes Lycaoniae tribuentem, ideo a Galatia eas distinxisse. Ut rem exemplo illustrem: si, postquam aliquem in duobus Sabaudiae urbibus commoratum fuisse quaeque ibi peregerit narravi, dein scriberem eundem, peragratis Sardiniae regno atque Lombardia, Toscanum adiisse; quis quaequo ex aequalibus nunc contendenteret, me Sabaudiae hacc oppida totamque Sabaudiam a Sardiniae regno ita distinxisse, ut illam hujus partem constituere negarem? Eo majore jure inde efficiet, illi, de quo scribo, in duobus illis oppidis prae caeteris negotia fuisse, in reliqua vero Sardiniae parte eum haud memoratu digna peregisse, vel certe mihi haec hand immotuisse. Quod si ad nostrum locum referimus: Theophilum ex iis, quae Cap. XVI leguntur, effecisse credimus, Paulum in Lycaoniae illis urbibus diutius commoratum fuisse, ut ecclesias antea in iis conditas, turbatas vero falsorum doctorum doctrina, confirmaret, data caeterorum apostolorum ac presbyterorum Hieros. epistolâ (v. 4, 5), in reliqua autem Galatiae parte non memoratu digna peregisse, ant certe haec Lucae haud immotuisse. Jam vero Pauli ipsius epistolum habemus, ταῦταις ἔντολησίαις τῆς Γαλατικῆς datam (I: 2), ex qua novimus permulta memoratu digna in Galatiae ecclesiis accidisse. Quodsi ab ipso Luca exemplum petas, adeas Cap. XIV vs. 20, 21, coll. v. 24. Num forte huc, quoniam vs. 21 Antiochia diserte memoratur, v. 24 autem legitur διελθόντες τὴν Πασιδίαν, negabimus Antiochiam a Luca Pisidiae urbem habitam esse? Cf. C. XIII: 14.

1) Mirum sane in epist. ad Gal., si quidem scripta sit post iter Act. XVI: 6 memoratum, Timothei nullam mentionem fieri; an Paulus fortasse ejus mentionem de industria vitaverat, ne Galatae aut falsi doctores hunc, quem Paulus circumcidì curaverat (Act. XVI: 3), Tito (Gal. II: 3—5) opponderent? Tale quid haud injuria su-

cae descriptione patet, cuiusque festinationis causam non celat historicus. Decreverat scil. Spiritus sanctus, Paulo, ecclesiis antea ab eo conditis in pacem restitutis (v. 5), Europam esse adeundam. Hinc eum impedit Spiritus s., quominus in Asia evangelium annuntiet et Bithyniam adeat (v. 6, 7.), donec Troade peculiari visione Apostolo suam voluntatem aperiat. Hac certe in re omnes, nisi praejudicatas opiniones afferant, mihi assentire persuasum habeo, Lucae verba διελθόντες δὲ τὴν Φρυγίαν καὶ τὴν Γαλατικὴν γώραν¹⁾ non favere, eorum sententiae, qui statuant, hoc ipso itinere omnia ea a Paulo in Galatia peracta esse, quae in ejus epistola reperiuntur. Ad Galatiae igitur provinciam referri possunt Lycaoniae pars meridionalis, quo pertinent urbes Iconium, Lystra, Derbe, καὶ ἡ περιχωρός (*Act. XIV* : 1—6, 51), et Pisidia, in cuius urbe Antiochia, uti et per totam regionem (δι' ὅλης τῆς γώρας *Act. XIII* : 14, 49), Christi evangelium annuntiatum fuit. Ipsa quoque Lucae verba (*XVI*, 6) parum suadent, ut hic de prima in Galatia Evangelii praedicatione cogitemus. Videamus utrum e Pauli verbis probabile quicquam effici possit.

spicareris, nisi nostra epistola ante *Act. XVI* scripta probari posset.

1) *De Wette*, I. I. p. 1: »schon der Gegengrund,” inquit, »dass der Sprachgebrauch sich nicht so leicht nach politischen Eintheilungen zu ändern pflegt, fast allein genügt“ ut Paulum proprie sic dictae Galatiae incolis scripsisse statuamus; quod argumentum non tanti faciet, qui jam per 80 et quod excurrit annos Lycaoniā et Pisidiā cum proprie sic dicta Galatia conjunctas fuisse teneat.

Tertio igitur Paulus suam epistolam scripsit ecclesiis in Galatia (*ταῖς ἐκκλησίαις τῆς Γαλατίας I: 2*), quibus urbes jam memoratas Lycaoniae et Pisidiae intelligi posse jure ¹⁾ haud facile quis negabit, neque e Paulina epistola quid afferri posse video, quod nos cogat, ut unice de Galatiac proprie sic dictae incolis cogitemus. Id certe nemo mirabitur, Paulum, verba illa indignatione plena: ὃ ἀνόητοι Γαλάται ο. τ. λ. (III: 1) concitata oratione scribentem, communis nomine uti maluisse, ut et Pisidiae et Lycaoniae incolas alloqueretur. Merito universe animadvertisitur, nostrae epistolae dictionem doctrinæque rationem (*τὸν τρόπον παιδείας*) magis convenire cum ea, quae in epistolis ad Thessalonicenses inveniuntur, et differre ab ea, qua Paulus deinceps in pugna contra Gnosin usus est, cuius primordia in epistolis ad Corinthios inveniuntur; neque tamen inde efficerem ²⁾, nostram epistolam ante epistolas ad Corinthios necessario scriptam esse; Pauli enim *τρόπον παιδείας* in epistolis contra diversos adversarios diversum fuisse licet concedamus, quis tamen neget, Paulum, etiamsi contra Gnosticos jam peculiari usus fuerit *τρόπῳ παιδείᾳς*, ad antiquiorem denuo redire potuisse, si

1) Böttger, l. l. *Zusätze* p. 40 sqq. nimium a contrariae sententiae patronis postulare videtur, contendens Paulum epistolam suam incolis Galatiæ proprie sic dictæ scribere hand potuisse. Utrum Paulus ante *Act. XVI: 6 Gal.* proprie sic dictam attigerit, necne, quaestio est vix ullius pretii. Böttger opinatur, Paulum in Galatia proprie sic dicta nunquam Evangelium praedicasse, hoc autem Petro reliquisse Abth. III. p. 1 sq.

2) Ut Böttger, l. l. Abth. III. p. 6.

in ecclesiis resurgerent adversarii, antea jam ab Apostolo oppugnati? Majoris autem faciendam duco magnam subinde convenientiam inter ea, quae in Pauli epistola et in Lucae relatione leguntur. Ac *primum* quidem *doctrinam* si spectes in oratione, Antiochiae in Pisidia habita, unde Evangelii, a Paulo in illis regionibus praedicati, rationem optime cognoscimus, sunt quae cum doctrinae in ep. ad Gal. expositione convenient. Ibi igitur (*Act. XIII v. 16—41*) introitum, ex historia ducto (16—23) Judaeis atque Proselytis in Synagoga (15—16) Dei in Israëlitas benignitatem breviter enumerat, arrepta fortasse occasione (v. 15) ¹⁾ ex iis, quae eo die in Synagoga präelecta fuerunt simulque ad Davidem auditores suos ducit ²⁾. Post hunc autem introitum a

1) Ingeniose conjectit Bengel illo die Pericopen, quae inveniuntur *Deuter. I*, lectam fuisse, collato *Act. XIII: 18* cum *Deut. I: 31*, quo loco LXX verbum נְשָׁמָה per τροφοφορεῖν vertunt. Cf. da Costa, l. l. p. 131 sq.

2) Baur, l. l. p. 191 in historica hujus rationis parte similitudinem animadvertis cum Stephani oratione (C. VII); quomodo vero ex eo, quod duo viri, populi cuiusdam historiam ita percurrentes, ut praecipua facta tantum tangant, similem rerum ordinem per periodos, quas ipsa historia præbet (vid. Baur, p. 43), secuti sint, dubium moveatur de alterutrius orationis authentia, nullus aequus judex facile perspicit; Baurum vero hinc dubium petere absurdum dico: partim enim ipse affirms (p. 58), Stephani doctrinam tantam vim in Paulum habuisse, ut post Pauli conversionem Paulinae doctrinae indoles hinc tota fere explicari possit, partim ipsius Stephani orationis authentiam negat (p. 52 sqq.), qua negata aut alius testis afferendus est, unde Stephani doctrina cognosci possit, aut, hoc deficiente, ingenuum fatendum esset, ignoram esse Stephani doctrinam; ex hac ipsa autem oratione, cuius authentiam Baur negat, quum quae de Ste-

Davide transit ad Jesum (v. 23), natum e genere Davidico, secundum promissum, Israëlis posteris servatorem a Deo datum (*κατ' ἐπαγγελίαν ηγάγε τῷ Ἰσραὴλ σωτῆρα Ἰησοῦν*). Christum igitur *κατ' ἐπαγγελίαν* datum esse imprimis urget (coll. etiam vs. 32), eandemque θέσιν in epist. ad Galatas tuctur contra adversarios, qui legis interventum promissa irrita reddidisse contendebant (Gal. III: 6—18), omniaque quae deinceps de lege hic disputantur (III: 19—29), probant legem promissis non contrariam esse, et *σπέζουμα τοῦ Ἀβραὰμ*, etiam intercedente lege, *κατ' ἐπαγγελίαν αληθόνομον εἶναι*¹); hinc quoque in

phani fatis narrantur imitationem quandam vocat eorum, quae de Christo relata legimus (p. 56), alius orationis, a Paulo deinceps habitae, authentiam impugnans, satis ostendit arma sibi ad honestam pugnam inenundam defuisse. — Eadem rerum capita in Pauli atque in Stephani oratione observari utriusque orationis collatio refellit; Paulus verbo totam Israëlitarum historiam a Patriarchis ad Davidem perecurrit: tempus Patriarcharum, habitationis in Aegypto, liberationis ex Aegypto, commorationis in deserto, devictae atque distributae terrae Canaänitiae, judicium, regum denique; néque ullam caussam video, cur Baur in hacce oratione tria prae cacteris rerum capita distinguat, quae in Stephani oratione veluti periodos constituere egregie animadvertisit (p. 44 sqq.): 1^o a patriarchis ad Mosen, 2^o a Mose ad Davidem et Salomonem, 3^o tempora post hosea duumviros, qui templum Hierosolymis conditum firmam Jehovac sedem constituerant.

1) Fateor, Paulum in Epistola ad Gal. *τὴν ἐπαγγελίαν*, Abramō factam, omni suo ambitu proponere, cumque *τὴν εὐλογίαν εἰς πάντα τὰ ἔθνη γενομένην ἐν Χρ.* I. imprimis urgere; sed quid miremur, primam praedicationem ad Judaeos ac Proselytas in Synagoga habitam, differre ab epistola ad Christians, plerunque certe e gentibus, scripta in ecclesiis, ubi Judaei prava aemulatione ducti (*Act. XIII: 45*) defecerant. Paulo certe non erat

oratione, Antiochiae habita, legis nulla mentio fit, nisi in fine, ubi diserte docet Paulus: ἀπὸ πάντων, ὃν οὐκ ἡδυνήθητε ἐν τῷ νόμῳ Μωσέως δικαιοθῆναι ἐν τοῖς τῷ (Xρ. I.) πᾶς ὁ πιστεύων δικαιοῦται (v. 39): de Jesu persona praedicatio, (v. 23, 27—37) ad quam in epistola tantum verbo respicitur (III: 1), ita composita est, ut eum promissum esse Messiam, cuius fata aannuntiaverant Prophetae, probet eadem prorsus ratione, qua ex Apostoli epistolis Jesum ab eo praedicatum fuisse certo novimus (1 Cor. XV: 3—8; Rom. I: 3; 2 Tim. II: 8)¹⁾. — Deinde in epi-

quod dubitaret an Judaei Antiocheni germani essent filii Abrahami, diserte autem hac ipsa oratione, et iis, quae de Judaeis Hierosol. affirmat (vs. 27), et allato Prophetarum monito (vs. 40 sq.) non omnibus Abrahami posteris κατὰ σάρκα datam esse salutem et universo quodam dicto quid ex argumentatione ἐκ τῆς ἐπαγγελίας ducta consequatur (v. 39) indicat.

1) Neque igitur altera hujus orationis pars (v. 23—37) e variis Petrinarum orationum frustis consuta est, uti Baurio, l. l. p. 102 visum est. Collatio locorum 1 Cor. XV: 3—8, et Rom. I: 3, ductorum ex epistolis, quarum authentiam omni dubio majorem et nunc esse et semper mansuram esse profitetur Baurus (p. 248), docet Pauli evangelium hoc ipsum esse, quod in Antiochena oratione annuntiantem audimus Apostolum, si unam Johannis Baptistarum mentionem excipias. Neque vero, ne quisquam versus 24 et 25 necessario e Petri oratione X: 37 sq. petitos esse contendat, quoniam ibi legit: μετὰ τὸ βάπτισμα, ὃ ἐκήρυξεν Ἰωάννης. Prouti in Antiochena oratione, veluti τινῶν habemus Evangelii historici, a Paulo annuntiati, ita Petri Evangelii compendium possidemus in oratione, ad Cornelium habita, cuius utriusque discrimen eo potissimum cernitur, quod a Petro ea etiam tradebantur, quae Christus per suam vitam peregerat, quorumque ipse testis fuerat, Pauli Evangelium a Christi morte ordiebatur. — Caeterum historicum, ut ita dicam, Evangelium (xii-

stola ad Galatas memorantur quaedam res minoris momenti, quae explicantur ac veluti supplentur iis, quae Lucas hoc ipso per Pisidiam atque Lycaoniam itinere accidisse enarrat. Ita ea, quae *Gal.* IV: 13—15 verbo memorantur, egregie convenient *cum* iis, quae Lucas Lystrae accidisse testatur *Act. XIV*: 11 sqq. Ibi igitur Paulus corporis sui debilitatem, qua laborabat, (*coll. 2 Cor. XII*: 7 sqq.) memorans ¹⁾, in memoriam revocat Galatis, eos propter hanc ipsum non tantum non contempsisse aut respusisse, imo vero tanquam *Dei nuntium* excepisse, tamquam Christum Jesum ²⁾. Refert autem Lucas, Lystrae incolas post miraculum a Paulo editum, Barnabam atque Paulum divino adeo honore prosecutos fuisse, Deos, hominum

εγγύα) Apostolorum in Actibus invenitur, hoc enim ante praedicandum erat, quam ecclesiae oriri poterant; in epistolis autem *dogmaticum*, q. d., Evangelium invenitur, cuius fundamentum est historicum, ex quo sensim ac sponte emanat; rebus in facto positis ab Apostolis annuntiatis, dogmata in ipsis ecclesiis e diversorum studiorum collisione oriebantur; ad haec autem respiciunt Apostoli in epistolis, ut errores refutarent, et quao vere e factis illis consequantur exponerent.

1) Cf. Rückert, in *Comment. ad l. l. et da Costa, Paulus*, I p. 166 sqq.

2) l. l. v. 14^b. ὡς ἄγγελον Θεοῦ ἐδίξασθέ με, ὡς *Xριστὸν Ιησοῦν*; Galatae sane, antequam iis cognitus erat Jesus Christus, Paulum non tamquam Christum excipere poterant, neque, postquam Paulus Jesum Chr. iis praedicaverat, facile intelligimus, quomodo hoc factum sit; sed quid opus est talibus argutiis? Exeperant Galatae Paulum tali honore, qualem sibi haud vindicaverat Apostolus: ὡς ἄγγελον Θεοῦ ἐδίξασθέ με; verba ὡς *Xριστὸν* moniti instar ab Apostolo addita sunt, ac ut significaret: tali honore me excepistis, qualis ipsi Christo Jesu, quem vobis annuntiaavi, debetur.

forma indutos, ad eos descendisse affirmantes; Barnabam *Jovem*, Paulum *Mercurium* dicentes. Barnabam pro Jove habitum fuisse et ita Paulo excellentiorem mirari quis possit, quum tamen Paulus Evangelium annuntiaret. (l. l. v. 9. 12) et miraculum ederet; probabiliter vero suspicatus est da Costa¹⁾ Barnabam pro Jove habitum fuisse a multitudine, corporis habitum attendente, ob venerabilem prolixumque corporis habitum; a quo quum Pauli habitus satis distaret, hunc, qui, adstante Barnaba illo sive Jove²⁾, et verba faciebat et miracula edebat, Mercurium, *Jo-vis* s. *Deorum nuntium* dixerunt. Mutato igitur Galatarum animo, Paulus nimium absurdumque adeo eorum erga se studium, quod antea jam una cum Barnaba culpaverat (*Act. XIV*: 14 sqq.) nunc iis in memoriam revocat; caussam autem mutati animi falsos doctores esse monet³⁾. Hi vero proponuntur a Paulo (*Gal. IV*: 17) tamquam zelotypia, non laudabili ambitione ducti, sed qui Galatas excludi cuperent, uti mihi quidem videtur, a salute, ejus Judaeorum zelotae unico circumcisos et Mosis legem observantes participes esse contendebant, quum Paulus unam eandemque salutem tam gentibus, quam Judaeis allatam nuntiasset; ut ita Galatae eos studiose sectarentur, rejecta Apostolorum doctrina,

1) l. l., p. 137.

2) Ad hunc honorem, quo Barnabam Lystrae prosecuti sunt, attentes, haud sine causa Barnabam in ep. ad Gal. II: 13 prae reliquis Judacis (*οι λαοι των Ιουδαιων*) tam diserte nuncupari: *ωρε ται Baqrāθas* intelligimus.

3) Vid. supra p. 22 nota.

eorum doctrinam amplecterentur, eosque adirent tamquam solius verae salutis praecones. Haud aliter adversariorum in Pisidia atque Lycaonia primitiae a Luca proponuntur. Antiochiae enim in Pisidia, unde deinceps Pauli adversarii in Lycaoniae urbes migrabant (*Act. XIV: 19*), Judaei zelotypia ducti (*XIII: 45 ἐπλησθῆσαν ζῆλον*) primum Paulo obloquebantur et obtrectabant, indeque, ut e Lucae descriptione patet, effectum est, ut in harum regionum urbibus paucitatum Judaei, multi vero Ethnici Christianam fidem acceperint¹⁾), quod denuo egregie convenit cum Pauli epistola, quam ipse scriptam esse profitetur ecclesiis, quarum socii maximam quidem partem Ethnico-Christianiani erant (*IV: 8, 9²⁾, *V: 2*, *VI: 12*); licet etiam Judaeo-Christianos inter eos fuisse nonnulla epistolae loca probabile reddant (*III: 2, 13. IV: 3, 21³⁾). Apostolorum hi adversarii in urbibus illis discordias inter cives et inimicas factiones concitatabant, unde graves tumultus oriebantur, (*XIII: 50, XIV: 4, 5, 19*), et recenter conversi calamitatibus affligebantur, prouti probabiliter nobis efficere**

1) Antiochiae in Pisidia an Judaei fidem Christ. acceperint non liquet; versu enim 43 dicitur quidem multos e Judacis atque Pro-selytis Paulum et Barnabam secutos esse, non vero utrum Christianam fidem acceperint, necone, prouti hoc v. 48 de ethnicis affirmatur (*ἐπιστεύοντες*); imo ob v. 46 de Judaeis hoc potius negarem: Iconii (*XVI: 1*) et Judaci et Ethnici ad sacra Chr. transierunt; Lystrae unice de Ethnicis cogitandum esse suadet tota rerum ibi gestarum narratio (11—19); de Derbae incolis non constat.

2) Conferendus est hicce locus cum Pauli in Lystrae urbe prae-dicatione *Act. XIV: 15*.

3) Cf. de Wette *Comm.* p. 2.

videmur e verbis, quibus Lucas Pauli atque Barnabae per Lystram, Iconium atque Antiochiam redditum descripsit: ὑπέστρεψαν εἰς τὴν Λύστραν καὶ Ἰκόνιον καὶ Ἀνθειόχειαν, ἐπιστηγίζοντες τὰς ψυχὰς τῶν μαθητῶν, παρακαλοῦντες ἔμμενειν τῇ πίστει, καὶ ὅτι διὰ πολλῶν Θλίψεων δεῖ ἡμᾶς εἰσελθεῖν εἰς τὴν βασιλείαν τοῦ Θεοῦ (XIV: 21^b 22). Tristi hacce harum ecclesiarum conditione, simul atque condabantur, ex Actibus Apost. comperta, num miremur, Paulum mox, quum una cum increcente adversariorum studio omnia in pejus ruerent, istam vitiorum catervam memorantem, exquisito quodam verborum delectu: ἔχθρας, ἔρεις, ζῆλους, θυμοὺς, ἐριθείας, δικοστασίας, αἰρέσεις, φθόνους, φόνους (*Gal. V: 20, 21^a*) i) isti catervae annumerasse, quibus dulces opponeret Spiritus s. fructus: ἀγαπήνγαράν, εἰρήνην, μακροθυμίαν, χρηστότητα, ἀγαθωσύνην, πίστιν, προσότητα (l. l. 22 sq.)? aut eum illis, ad quos scriberet, hoc praeceptum commendasse: μὴ γινώμεθα πενόδοξοι, ἀλλήλους προκαλούμενοι, ἀλλήλοις φθονοῦντες. (v. 26. coll. v. 15)? aut iis in memoriam revocasse, quanta mala passi fuissent (III: 4) 2)? Denique verba illa ad epistolae finem hand sine

1) Recte de Wette, *Comm.* p. 80. „Die nun folgg. Laster ἔχθραι u. τ. λ. sind grade die, welche den Gal. zur Last fielen.“

2) Antiquissimam hance horum verborum: τοσαῦτα ἐπάθετε εἴκη; εἴγε καὶ εἴκη interpretationem, a Chrysostomo jam propositam, Rückerto *Comm.* p. 127 assentiens tueor. Cohäret sane v. 4 cum praecedenti versu 3, non autem, recte monente Rückerto, cum v. 2 neque cum v. 5, quo interrupta versus 2 sententia particula οὐ denuo excipitur. Quamdiu Galatae Spiritui obsecuti erant, calamitates passi erant; sed ipsae hæc calamiti-

indignatione apposita: τοῦ λοιποῦ, κόπους μοι μῆδεις παρεχέτω· ἐγὼ γάρ τὰ στίγματα τοῦ κυρίου Ἰησοῦ (»signa et notas, quae in corpore Pauli remanserant a periculis et calamitatibus propter caussam christi perlati^s¹⁾) ἐν τῷ σώματι μονι βαστάζω (VI: 17), nullam praebebunt difficultatem ei, qui, quae Paulo in itinere per Pisidiam et Lycaoniam acciderint, animadverterit: postquam enim Paulus et Barnabas Pisidiacis finibus expulsi (Act. XIII: 50) et Iconio, exorto tumultu, aufugere coacti erant (XIV: 5, 6), Lystrae tandem multitudo, a Judaeis Antiochia et Iconio advenis concitata, Paulum, lapidibus obrutum, ex urbe traxerunt, pro mortuo illum habentes (XIV: 19).

§ 5.

*Quando probabiliter conscripta sit epistola ad Galatas
et disputatis concluditur.*

Scriptam esse epistolam ad Galatas²⁾ ante Concilium Hierosol. Act. XV postulat apologeticae argumentationis in epistola ratio; post vero iter Act. XIII: 14—XIV: 24 docet epistolae cum Actibus collatio, ut adeo

tates viam parabant ad regnum Dei (act. XIV: 22); nunc autem dementes isti Galatae, a Spiritu exorsi, in carne desinebant. Num igitur, eos rogit Paulus, tantas calamitates frustra tulistis? Si modo frustra!

1) Winer *Comm. ad h. l.*

2) Primus inter caeteras Pauli epistolas locus epistolae ad Gal. assignatur in Marcionis Canone, teste Epiphani. in l. adv. haeres. XLII, 9. Cf. Keil. I. l. p. 364.

scripta dicenda sit eo tempore, quod praeteriit inter *Act. XIV*: 24—28. Itaque Antiochiae in Syria, quo rediit Apostolus et per satis longum temporis spatum (26—28) commoratus est, scriptam illam esse suspicamus; quam suspicionem singularis nostrae epistolae salutatio¹⁾ probabilem reddit. Verissime enim Böttgerus²⁾ »Für Antiochiën aber als den Ort der Auffassung sprechen die Worte des Grusses: *καὶ σὺν ἐμοὶ πάντες ἀδελφοί* (I: 2). Den Ehrenplatz »in den Aufgangsgrüssen der paulinischen Briefe erhielten nur einzelne Auserlesenen. Solcher Ehrenmänner waren Mehrere in der Mutterkirche des weltumfassenden, allgemein menschlichen Christenthums, und alle standen Sie mit Paulus in enger Verbindung“ (vergl. *Ap. G. XIV*: 26—28 mit *XIII* 1—3 und *XI*; 25 f.). Ad idem hoc tempus Petri a Paulo castigationem (*Gal. II*: 11), de qua deinceps videbimus³⁾, referen-

1) Alius sententiae patronis hanc salutationem difficultates peperisse docent Rückerti verba *Comm. p. 7*: »Da P. in seinen Ueberschriften gewöhnlich seinem Nahmen nach einem, oder einige bestimmte Nahmen beifügt, so fällt es auf, dies hier nicht zu finden; aber die Ursache möchte sich wohl kaum ermitteln lassen.“

2) I. l. p. 47; jam Beza de presbyterio Antiocheno explicuit; Da Costa l. l. p. 256 quoque ob hanc salutationis formulam Antiochiae scriptam esse epistolam *Act. XVIII*: 22b censet. Epistolae conscriptionem ad *Act. XIV*: 28, *διέτριψον δὲ [ἐξεῖ] χρόνον αὐτὸν διέγοντες μαθηταῖς* (coll. *XIII*: 1) referentes, habemus denuo prorsus fortuitam inter *Actus Ap.* et *P. epistolam convenientiae notam*, quales permultas miro ingenii acumine eruit da Costa.

3) In disputatione nostra hujus Antiochenae altercationis nullam adhuc mentionem fecimus; qui enim ex ea argumentum petunt, quo probent aliud iter *Gal. II*: 1 memorari, quam *Act. XV*, peti-

dam esse puto, quam accurate Galatis suis scribit Apostolus ipsis verbis, quibus Petrum refellerat, memoratis ¹⁾, utpote rem, quae nuperrime acciderat Paulique animum haud parum percusserat. Memorat autem Paulus hanc castigationem, ut Galatas doceat se suam doctrinam, quam coram iis proposuerat, haud aliter coram caeteris Apostolis, ad quorum auctoritatem provocabant Pauli in Galatia adversarii ²⁾, tueri; quum speciatim Barnabae propter Galatas mentionem

tionem principii, q. d., committunt, neque satis attendunt Pauli verba *Gal.* II: 12, 13, ubi diserte docet, Petri hanc agendi rationem e timore (*φοβούμενος τὸν ἐν περιτομῇς*) ortam esse, et cum theoretica, ut ita dicam, Petri persuasione cam pugnare (*συντελεῖθησαν αὐτῷ — αὐτῷ τῇ ὑπονομίᾳ*). Haec ratio explicanda est e Petri indole, ex Evangeliijam nota nobis, servida illa, et ad magna quaeque suscipienda parata; quae tamen, ubi periculum est, nonnumquam ad timide recedit et tanto altiore lapsu cadit, quo certius atque alacris antea magna pollicita erat. Quam incepit ex hac altercatione nonnulli efficiant, Petrum, quoad doctrinam, a Paulo dissensisse, vere jam mouuit J. D. Michaelis, *Zusätzen der vierten Auflage vor der dritten seiner Einleitung Göttingae 1788, p. 283:* »Sonderbar ist es, wenn man aus unserm (Galater) Brief eine von Paulo verschiedene Lehre Petri vom Levitischen Gesetz erdichtet und Einer dem Andern dies nachgesagt hat. Unser Brief zeigt ja grade, dass Petrus eben das glaubt, was Paulus; ob er sich gleich einmal aus Gefälligkeit gegen diese Jüdenchristen den Mahlzeiten der Heidenchristen entzog.“ Cf. Schliemann die *Clementinen* p. 391 in nota et auctores ibi laudati.

1) Verba enim v. 15—21 referenda esse ad Antiochenam Pauli contra Petrum orationem cum optimis interpretibus persuasum mihi habeo. Cf. de Wette, *Comm.* p. 29 sq.

2) Fortasse falsi illi doctores in Galatia ipsa, hac Petri agendi ratione audita, hanc suos in usus convertebant, ut Pauli doctrinam everterent; neque frustra sane. Aperte nunc Paulus et accurate totius rei habitum exponit.

faciat ¹⁾). Neque dicat quis, loca inveniri in ep. ad Gal. (veluti V: 7. III: 3—5. VI: 6), quae probent, Galatas non paullo, sed diu ante conscriptam hanc epistolam conversos fuisse ²⁾, et longius etiam tempus requiri, ut falsorum doctorum successum inter Galatas explicemus, quam quod e nostra sententia inter conditas ecclesias et conscriptam epistolam praeteriit; iter enim, *Act. XIII* et *XIV* memoratum, circa annos 46 vel 47 susceptum est; post illud Paulus *χρόνον οὐκ ὀλίγον* (*XIV: 28*) Antiochiae mansit; neque ante concilium Heros (ao 51 v. 52), de alio itinere relatum quid habemus; quatuor autem vel quinque annorum spatium ad locos laudatos intelligendos sufficere nemo facile negaverit; Galatas autem repente celeriterque, non sensim ac pedetentim ad falsorum doctorum doctrinam defecisse luculenter docet illud *οὐτω ταχέως* (*Gal. I: 6*), collatis iis, quae leguntur *III: 1 τις ἡμᾶς ἐβάσκανε;* et *IV: 20* ³⁾.

§ 6.

*Quodnam iter a Paulo in epistola ad Galatas
probabiliter spectetur, indagatur.*

Disputatio de itinere, *Gal. II: 1* memorato, sponte atque necessario nos deduxit ad quaestionem de tem-

1) Vid. supra pag. 34 nota 2.

2) Ita v. c. de Wette in *Comment.* ad *V: 7*.

3) Cf. Böttger, I. l. *Abth. III*, p. 7 sq. et Schott in *Commentario* p. 297 sq. et 330, qui recte monet, illud *οὐτω ταχέως* ad definiendum tempus conscriptae epistolae nihil conferre.

pore, quo conscripta fuerit epistola ad Galatas. Redeamus eo, unde digressi sumus et videamus quodnam iter Hierosolyma susceptum spectaverit Apostolus. De itinere, *Act. XV* memorato, non cogitandum esse, iter vero ante illud tempus susceptum necessario spectari¹⁾ vidimus; in *Actibus* autem inter primum (IX: 26) et tertium (XV), secundum Hierosolyma susceptum memoratur (XI: 30 et XII: 25). Ne igitur sententiae immoremur, jam diu refutatae, cogitandum esse de itinere aliquo à Luca omissa, peracto eo tempore, quo Paulus (*Act. XIV: 28*) Antiochiae degit²⁾, continuo utrum iter, *Gal. II: 1* memoratum, cum secundo in *Actibus* itinere conveniat, necne, inquiramus. — Ac primum quidem quod Paulus iter illud *κατὰ ἀνοικυῖν* (II: 2) a se susceptum dicit, id »cum Lucae in *Actis* (XI: 27 sqq.) narratione minime pugnare, sed cum ea egregie potius conspirare“, vere jam monuit Keilius³⁾; itineris enim primam causam Lucas refert Agabi, prophetae Hierosolymi-

1) Epiphanius haeres. XXVIII de itinere *Act. XXI: 15* memorato, C. G. Hoffmann et Whiston de itinere, a Luca *Act. XVIII: 22*, una tantum voce significato, cogitarunt, quibuscum fecit Köhler, probantibus quodammodo Rückerto et Crednero, quum Schrader iter susceptum suspicatur tempore *Act. X: 20* sq. Cf. Keil, *Opusc. Acad.* p. 169 nota 13 et de Wette in *Comm.* p. 25.

2) Quam sententiam propositam a Paley l. l. p. 168 egregie jam refutavit Henke, *Anim. ad vers. Germ.* p. 422 sq.

3) Quum διη ἡ οἰκουμένη hand facile de Palaestina tantummodo intelligatur, Agabus universe de aliis ejusdem generis calamitatibus cogitasse censendus est, potissimum autem e Lucae certe mente de Palaestinensium fame. Cf. Anger in *disput. de temporum ratione in Actis Apost.* p. 196 coll. p. 42.

tani, qui Spiritu sancto ducebatur, (v. 27 ἐσή-
μανε διὰ τοῦ πνεύματος coll. C. XXI: 10, 11
τάδε λέγει τὸ πνεῦμα τὸ ἀγίου) vaticinationem de in-
signi fame, quae mox in orbe Romano exoriretur et Pa-
laestinam maxime vexaretur ¹⁾; hanc ἀποκάλυψιν ²⁾),
tanquam itineris ansam ³⁾), a Paulo spectari potuisse,
neque opus esse, ut eam de patefactione, quae ipsi
Paulo contigerit, interpretetur quis est, qui ob justas
caussas neget ⁴⁾? Imo haec quoque duo vocabula *κατὰ*
ἀποκάλυψιν, ita exposita, insignis momenti esse in
Pauli apologetica argumentatione jam suspicatus est
idem Keilius, ubi: »id vero,” inquit, »qua de caussa
nunc diserte admonendum putaverit Paulus, profecto
non potest intellectu difficile judicari, quum cuilibet,
de universi hujus loci consilio vel leviter tantum cogi-
tanti, facile appareat, eum propterea id fecisse, ut
ostenderet, *sibimet ipsi non necesse visum fuisse*, ut
Hierosolyma nunc adiret, nisi peculiari divini spiritus
moderamine eo fuisset adductus,” et tali quidem spiri-
tus divini monito, quod ne ipsum quidem Paulum

1) I. l. p. 167 sq.

2) Prophetarum in prima ecclesia vaticinationes *ἀποκάλυψις*
dicit Paulus 1 Cor. XIV: 6, 26, 30—32.

3) Cf. Winer de *Praep. κατὰ Gramm.* p. 478, b.

4) De Wette, *Comm.* p. 16, *κατὰ ἀποκάλυψιν* vertens: »ver-
möge, zu Folge einer (*mir gewordenen*) Offenbarung,” addit: Diese
subjective Fassung ist so nicht nothwendig, doch natürlich. —
quare? imo Pauli apologeticae argumentationi contraria. Böttger,
I. l. Abth. III. p. 12, *κατὰ ἀποκάλυψιν* explicat: ut patefactionem
acciperem et illam quidem, cuius Apostolus meminit 2 Cor. XII:
20, coll. Act. XXII: 17 sqq., qua magis exquisita interpretatione
haud indigemus.

spectaret; caussam igitur hujus itineris prorsus extrinsecus allatam et a Pauli persona separandam esse. Neque dicat quis¹⁾, Paulum, si hanc Agabi patefactionem respexisset, pluribus verbis eam indicaturum fuisse. Novimus enim Paulum in Galatiae ecclesiis pecuniarum collationem in commodum pauperum Hierosolymitanorum instituisse (1 Cor. XVI: 1); idque ante hanc conscriptam epistolam factum esse suadet ipsa ratio, qua Cap. II: vs. 10 verbo tantum hujus collationis mentionem facit²⁾ et maxime additum illud: ὅτι ἐσπούδασα αὐτῷ τοῦτο ποιῆσαι, neque igitur Galatas prima collationis ansa latere poterat, et ita Paulus opportune et apologetico suo consilio imprimis accommodate verbo tantum illis hujus alterius itineris ansam in memoriam revocat. — *Deinde* si de itineris consilio quaeras, diserte illud ab Apostolo non indicatur, vidimusque antea hoc ipsum inter primas causas esse, cur de itinere *Act.* XV memorato hic cogitari haud possit. Quod autem Apostolus (II:10) tam diserte pecuniarum illam collationem memoret, rem sane in Pauli hacce argumentatione nullius momenti, indicio nobis est, Paulum singula, quae in illo itinere acta erant, accurate referre; quum ratio, qua haec pecuniarum collatio memoretur, suadeat, hanc referendam esse ad ea, quae praeceteris in illo itinere fuerint acta³⁾,

1) Veluti FRITZSCHI, l. l. in *Fritzschiorum opusc. Academ.* p. 167.

2) Pecuniarum haec in Galatiae ecclesiis collatio fuit fortasse in causis, cur Apostolus continuo πρεσβυτέρους instituerit *Act.* XIV: 23.

3) Illud μόνον κ. τ. λ. illorum sententiae, qui h. l. de itinere *Act.* XV cogitant, haud favere, vere monet Baurus l. l. p. 183:

quod denuo egregie convenit cum itinere *Act. XI*: 30 memorato, a Paulo et Barnaba suscepto, ut pecunias, quas ecclesiae Antiochenae socii contulerant, Hierosolyma transferrent; qua opportunitate duumviris hisce commendatum fuisse, ut deinceps perpetuo pauperum Hierosol. causam agerent, quam aliquot annis post, probabilius videtur. — Quod *tertio* ad eos pertinet, a quibus iter susceptum fuit, in utroque itinere Barnabas Pauli in munere socius fuit: quod vero oppositae sententiae patroni in suam sententiam afferant, *Act. XV*: 2 Antiochenae ecclesiae socios, praeter Paulum et Barnabam, *καὶ τινας ἀλλούς ἐξ αὐτῶν* elexisse, quum etiam *Gal. II*: 1 dicat Paulus: *συμπαραλαβών καὶ Τίτον*, id parum sane procedit, quum meliore jure ita argumenteris: *Act. XV*: 2 ab Ecclesiae Antioch. sociis munus Paulo, Barnabae *nonnullisque aliis* demandatur, in epist. vero ad *Gal. II*: 1 Paulus a se susceptum fuisse iter affirmat una cum Barnaba; Titi prorsus singulari ratione (*συμπαρ. καὶ Τίτον*, et vs. 3 *Τίτος ὁ σὺν ἐμοι*) et, ut e sequentibus patet, ob pecuniarem caussam mentionem facit; rebus autem quae a Paulo et Barnaba Hierosolymis gesta fuerunt, ne-

»Wie hätten die Apostel diese Unterstützung durch Armenbeiträge, die doch für den Zweck der Verhandlung selbst blosse Nebensache war, als das Einzige hervorheben können, wenn weit wichtiger auf den Gegenstand der Verhandlung selbst, die Gültigkeit des mosäischen Gesetzes, sich beziehende Bestimmungen gegeben werden?“ licet idem his verbis: *μόνον κ. τ. λ.* aliam inter Apostolos *doctrinae* convenientiam negari justo citius prohibet; de *doctrinae* enim capite ne sermo quidem est. Cf. Ebrard in diario: *Zukunft. d. Kirche* 1847. p. 321 sq.

quaquam sese immiscet. Hoc ergo itinere (*Gal. II: 1*) his tantum duumviris, quam pluribus aliis munus demandatum fuisse, probabilius mihi quidem videtur.

Denique, ne alia minoris momenti aut satis incerta argumenta afferam¹⁾, etsi Paulus ex itineribus, quae Hierosolyma suscepit in apologetica sua argumentatione, uti vidimus²⁾, unum omittere potuerit, probabilius tamen manet iter *Gal. II: 1* itineri, Cap. I: 18 memorato, proxime successisse. Quum enim (*Gal. I: 22 sq.*) affirmet, se post primum illud iter in Syria et Cilicia versantem, Christianorum per Judaeam coetibus fama quidem non autem facie notum esse, si Paulus ante *Gal. II: 1*

1) Ita v. c. argumentum a Böttgero allatum l. l. *Zusätze* p. 39: quod Joannes Gal. II. una cum Petro atque Jacobo memoretur, *Act.* autem Cap. XV illius mentio desideretur; unde conjicit Joannem, trucidato fratre Jacobo, Hierosolyma aufugisse, Paulum vero atque Barnabam, paullo antea Hierosolyma adiisse. Quis autem neget, silentium de Joanne *Act. XV* inde simpliciter explicari posse, quod in *publica* concione verba haud fecerit? Quod autem dicit, hoc confirmari testimoniis Clem. Alex. *Strom.* VI. p. 762 et Euseb. H. E. V: 18, Joannem 12^o. p. Chr. mortem anno Hierosolyma adiisse testantium, hacc loca universe docent 12^o. p. Ch. m. anno Hierosolyma stabilem Apostolorum sedem esse desiisse. Cf. Credner, *Beiträge zur Einl. in d. bibl. Schr.* I. p. 353 et 363. — Pariter haud immoramus refutandis objectionibus quibusdam minoris momenti, velutieorum, qui monent in secundo itinere (*Act. XI: 30*) Paulum nondum praedicationis suae prosperi successus rationem habere potuisse, uti *Gal. II: 7, 9*; at vero P. jam per triennium in Arabia et Damasci, et per octo certe annos in Cilicia et Lysia Evangelium praedicaverat, et maxime quidem, summo cum successu, Antiochiae (*XI: 26*), cuius rei certum pignus habebant in ipsis a P. et Barn. ex Antioch. ecclesia collatis pecuniis.

2) Supra pag. 7.

etiam iter suscepisset, merito illius mentio exspectatur, quoniam hoc ipso Palaestinensibus coetibus facie innotescere potuisset¹).

§ 7.

Duplex tollitur controversia, quae obstare videtur sententiae, qua iter, a Paulo epist. ad Gal. II: 1 et a Luca Act. XI: 30 memoratum, idem esse habetur.

1. *Controversia e Lucae de multis rebus silentio.*

Nostrae sententiae duo obstant haud contemnenda, Lucae nempe de plerisque, quae apud Paulum leguntur, silentium, et pugna Chronologica, multo etiam majoris habita. Utraque quaestio cum quaestione de fontibus, quibus usus fuerit Lucas, arctissime est conjuncta; in qua dirimenda provocare liceat ad Schwanbeckii universe accuratissimam atque philologo dignissimam disquisitionem. Dum Paulus, uti vidimus, tamquam Apologeta, concilii Hier. decreta, si lata fuissent, nequam silentio praeterire potuit, illius autem consilio convenienter erat, ut singula, quae Hierosolymis versatus maxime quidem cum Apostolis pergerat, memoraret; ita a Luca eadem in singulis, quae Pauli *privatas* res spectabant, diligentia immerito exspectatur; etiamsi haud injuria fortasse contendi possit, huic ea quoque innotuisse, quippe ab

1) Cf. Fritzsche, I. l. in *Fritschiorum opusc. Acad.* p. 166 et 224, qui tamen huic argumento nimium tribuere videtur.

ipso Paulo accepta. Ubi vero ad rationem atten-dimus, qua Lucas fontibus, qui ipsi praesto erant, usus est, et ipsorum fontium indolem indagamus, silentii de multis rebus, quae Paulum spectabant, probabilis caussa datur. *Schwanbeckius* igitur, Riehmii¹⁾ vestigia in multis premens, illustrata tamen face eorum, quae per viginti quinque annos ad quaestionem illustrandam valuerant, et ac-curatiore imprimis ab eo instituta ipsorum Actuum indagatione, totum Actuum librum e scriptis monu-mentis compositum esse censem, quae in operis calce²⁾ digesta hunc in modum retulit: posterioris partis (XV: 1, 2 et inde a XV: 13 ad finem XXVIII: 31) Silae aduersaria fontem constituunt; media Actuum pars e fragmentis potissimum e Barnabae quadam bio-graphia sumtis, composita est (XI: 19—30; XII: 25; ad XIV: 28; XV: 2^b, 3, 4, uti etiam IX: 1—30 et IV: 36, 37); quae de Stephano leguntur (VI: 8—VIII: 2) e peculiari quodam scripto hausta sunt; reliqua autem, prior potissimum libri pars, (I: 1 ad IV: 38 ad VI: 7; VIII: 3—40, IX: 31 ad XI: 18; XII: 35; IV: 1—24; XV: 5—12) e Petri biographia manarunt³⁾. In omnibus fortasse Viro doctiss. haud assentiri, in disputatione de posteriore potissimum parte dubitanter saepe quaeri possit, num suam sententiam tuendi stu-dio abreptus, immerito injurias Lucae intulerit; illius autem disputatio de media Actuum parte⁴⁾, et quidem,

1) Cf. ipsius judicium de Riehmii laud. dissert. l. l. p. 81—87.

2) l. l. pag. 265.

3) De hac parte in altero tomo uberiori disputandum illi erit,

4) p. 211 ad 249.

de iis capitibus, quae in nostra disquisitione in censem veniunt (XI: 19—XII: 25—XIV: 23), quod nobis gratum atque acceptum, prae caeteris probabilitate sese commendat. Schwanbeckius ab itineris, quod Barnabas et Paulus suscepereunt, descriptione (c. XIII et XIV), quae continuam atque integrum sectionem constituere videtur profectus, (unde his duobus capitibus διηγησιν seorsim scriptam a Luca operi insertam esse suspicatur Bleekius¹), alias etiam Actuum partes ex eodem hoc scripto petitas videri ostendit, his potissimum notis usus: In priore Actuum parte rerum gestarum descriptio luculenter modo cum Hierosolymorum, modo cum Antiochiae urbe arctissime connectitur²), ita ut in hac descriptione eorum, quae alibi acciderunt, vix ratio habeatur, aut vaga tantum indicia occurrant, singula autem ad Antiochiam reducantur, in illa contra singula ad Hierosolyma. — Ante Act. Cap. XV — en alteram notam — de Paulo ea fere unice memorantur, quibus Barnabas etiam sese immiscuerat, cuius utriusque viri res gestae arctissime copulantur, (*eine entschiedene Dualgeschichte*). Paulus autem tertio ante Act. XV ex aliorum, Barnabae maxime atque Antiocheni coetus auctoritate pendens proponitur. Ad has potissimum notas, varias in priore Actuum parte sectiones exigens, alias etiam capitibus XIII et XIV addendas esse statuit, et ita ad unum eundemque fontem plures partes refert, quae argumenti cognatione

1) In diario: *Stud. u. Krit.* 1836 pag. 1043.

2) I. l. pag. 7 seq. coll., pag. 214.

candem originem produnt, quum, ubi aliis Petrinis atque Hierosolymitanis, ut brevi dicam, narrationibus, inter se disjunguntur, sequens tamen pars praecedentem, a qua dis juncta est, semper respiciat et narrationem hac disjunctione abruptam recipiat ¹⁾. Deinde pluribus acute vereque probare conatur hoc scripto, quod Lucae, Actus componenti, praesto fuerit, Barnabae potissimum fata descripta fuisse; in Pauli enim vita sunt quae prorsus omittantur, veluti illius in Arabia commoratio (Gal. I: 17); alia ita propoununtur, ut luculenter appareat scriptori id imprimis cordi fuisse, ut quid Barnabas perfecerit notaret, reliqua minus curans (*Act. IX: 27–30 coll. Gal. I: 18, 19*); alia quoque leviora indicia ad Barnabam prae Paulo respiciunt, veluti quod primus laudatur inter Prophetas atque magistros Antiochenos ipsiusque nomen Paulino praeponitur ²⁾, antequam *ipse* Lucas Sauli in Pauli nomen mutavit ³⁾, aliaque. — Concludit fere hunc in modum: Lucae praesto fuisse descriptionem quandam ⁴⁾ rerum, a Barnaba gestarum,

1) Cf. XI: 25 cum IX: 30; XII: 25 cum XI: 30.

2) *Act. XI: 30. XII: 25; XIII: 1, 2, 7.*

3) *Act. XIII: 9.* Deinde scribitur ὁ Παῦλος καὶ ὁ Βαρνάβας *XIII: 43, 46, 50; XV: 2.* — Huic tamen notae haud adeo multum tribendum censeo, quoniam *Act. XIV: 14* iterum legitur *Βαρνάβας καὶ Παῦλος*. Cf. etiam *XV: 2, 22* cum vs. 12 et 25.

4) In hac ipsa Barnabae biographia Evangelii illam praedicationem per Pisidiām atque Lycaoniām (Cap. XIII et XIV) peculiarem partem (einen ursprünglich unabhängigen Missionsbericht) constitutere probabile censem auctor l. l. pag. 245 sq. Hoc autem iter, ad evan-

qua ita usus sit, ut quaecunque Barnabam solum spectarent omittent, ea autem colligeret loca, quibus Pauli mentio fieret, atque haec accurate et anxie adeo secutus libro suo insereret. Animadversis a Viro doctiss. ad nostram quaestionem de Lucae silentio tralatis, *primum* monemus, quae hic in censem veniunt petita esse ex Antiocheno, ut ita dicam, fonte; Lucas enim, narratione Capitis XII: 1—24, ex alio scil. e Petrino s. Hierosol. foute petita, interserta ¹⁾, Cap. XII: 25 Antiochenam narrationem, inde ab XI: 30 intermissam, recipit, et ad Antiochenam ecclesiam redit. Quod igitur eorum, quae a Paulo atque Barnaba Hierosolymis gesta sunt, nihil aliud memoratum legimus, nisi hoc unum: ὑπέστρεψαν οἱ Ἰερουσαλήμ, πληρώσαντες τὴν διακονίαν ²⁾, inde explicatur, quod scriptum, quo Lucas fontis in star usus sit, ea describens, quae Antiochenam ecclesiam spectarent, reliqua minus curaret; Barnabae *deinde* potissimum gesta memoraret, Pauli tantummodo, quatenus una cum Barnaba egerit. Neque

gelium praedicandum susceptum, ex Antiochia quoque suscipitur, eoque perfecto Antiochiam redeunt; talium descriptionum primam originem inde repetendam esse, quod Evangelii praedicatores sive Antiochiam, seu Hierosolyma reversi, itinerum rationes dare solebant, probabiliter idem conjicit.

1) Ita hic quoque, rebus, quae Hierosolymis acciderant, accuratissime traditis, alia indefinite prorsus memorantur, veluti vs. 17: ἐπορεύθη εἰς Ἐπερόν τὸ ποτ.

2) XII: 25. Haec verba haud attendit Ebrardus in diario: Zuk. d. Kirche 1847, p. 311, conjiciens Paulum et Barnabam Act. XI: 30 Hierosolyma haud adiisse.

igitur mirum ea, quae Paulus *Gal.* II: 1—9 memorat, quaeque ipsum, nisi solum, multo magis certe, quam Barnabam spectarent, in scripto illo desiderata fuisse; quum Joannis Marci, quippe Barnabae consobrini, nostro loco (XII: 25) mentio, quae apud Paulum desideratur, ex eadem scripti indole explicetur.

2. *Posterior e temporum computatione ducta.*

Ad difficultatem accedentes, quae e chronologia in sententiam, quam tuiti sumus, movetur, ante omnia palam profitemur, hoc dubium reliqua omnia gravitate superare, neque mirum nobis esse, illos, quibus persuasum est, res in *Actibus* descriptas probabili-
ter chronologice disponi posse, propter hoc potis-
simum oppositae sententiae calculum adjecisse ¹⁾; ab altera autem parte hos rite attendant velim, annon certiorem argumentationem missam faciant, ut minus certam amplectantur. Nobis enim — et quis aliter hac de re judicaret? si forte, hunc ipsae implicitae Chronologorum disquisitiones et inter se tam diversae variorum Chronologorum sententiae persuadeant ²⁾ —

1) Ita v. c. Winerus, *Comment. in P. ad Gal. Ep.* p. 153, postquam quaedam, neque tamen gravissima, argumenta, quae nostrae sententiae favent, citavit „atque haec,” inquit, „non ca-
rent aliqua veritatis specie; dubitaverim tamen *iis* aliquid tribuere,
nisi istam virorum doctorum sententiam ad temporum et annorum
rationes bene accommodari posse demonstratum fuerit.”

2) Inspiciantur solummodo tabulae, diversorum chronologorum

nobis igitur persuasum est logicis argumentis, e Pauli in epist. ad Gal. apologetica argumentatione ductis, priorem locum, quippe certioribus, assignandum esse; illumque injuste agere perhibemus, quicunque haec negligat aut minoris faciat, ut argumentationem e dubia temporum computatione petitam evehat.

En paucis verbis rei difficultatem, prouti vulgo proponitur: quodsi quaedam datur in N. T. libris temporis nota, quae probabiliter definiri possit, valet hoc de iis, quae *Act. XI: 27 ad XII: 25* leguntur; Herodem enim Agrippam A° aer. Dion. 44 mortuum esse omni dubio caret, et quidem, ut probabiliter ex *Act. XII: 19—23*, coll. cum v. 3, effecit Angerus¹⁾, haud diu post Paschale illius anni festum; circa idem hoc tempus, intra annos scil. 44 et 47 aer. Dion. fames ab Agabo praedicta (*Act. XI: 28*) Judaeae incolas vexavit. Barnabae igitur atque Pauli iter (*Act. XI: 30*), cui haec ipsa Agabi vaticinatio ansam praebuerat, paullo ante susceptum censendum est: quodsi autem hoc idem erit cum itinere, a Paulo (*Gal. II: 1*) memorato, si illi 14 anni numerandi erunt a primo itinere Hierosol. aut praedicatione in Syria atque Cilicia (*Gal. I: 18 ἐπειτα μετὰ; 21 ἐπειτα;* *II: 1 ἐπειτα δια*), illius conversio ad sacra Christ. intra annos 26 et 28 aer. Dion; sin vero ab ipsa conversione nu-

sententias continentis: Goeschenii, in diario *Stud. u. Krit.* 1831. IV ad p. 706, Angeri, in disput. *de temporum in Actis Apostolorum ratione* ad pag. 190, Wieseleri in opere: *Chronol. Synopse der vier Evangelien*, p. 485 sq.

1) Cf. de tota hac re docta illius disputatio l. l. p. 39—49.

merandi 14 anni, haec intra annos 29 et 31 aer. Dion. accidisse dicenda est; eo igitur tempore, quod aut Christi mortem longe antecedit, quod absurdum; aut, ne unius quidem anni spatio peracto, ita prope hanc insequitur, ut ecclesiae fatis, quae *Actuum Cap. I—VIII* describuntur, sufficiens temporis spatium haud relinquatur¹⁾. Simplex haec difficultatis expositio simul docet, quantis difficultatibus laborandum sit illi, qui in hac chronologia validum argumentum ad nostram sententiam oppugnandam petere velit; quem enim totius argumentationis cardo, annus scil., quo Christus mortuus fuit, certo definiri vix possit, et, deficientibus in ipsa *Actuum* descriptione notis²⁾, nemo umquam probabiliter statuere pos-

1) Chronologicam difficultatem haud rite proposuisse Virum doctiss. da Costa, l. l. p. 144, monui in operis recensione in diario: *de Gids* 1847, No. 8, p. 614 seq.

2) Etsi in *Actibus* permulta temporis indicia occurunt, et imprimis, posteriore parte identidem, qua anni parte, quo die, quinqua hora etiam (horarum indicia in parte priore quoque permulta occurunt II: 15, III: 1, X: 3, 30) quid acciderit indicetur; ita ubi ab auctore, quo anno quid evenerit, quaeris nusquam responsum accipis »Angaben über die absolute Chronologie“ nusquam in *Actuum* libro dantur; posterior autem pars priore multo ditior est iis notis, quas »Angaben über die comparative Chronologie“ dicit Schwanbeckius, l. l. p. 47. Cf. Anger, l. l. p. 4^a notis n. o. p. Haud assentior Viro doctissimo van Oosterzee, qui in: *Verhand. over de waarde van de handelingen der Apost.* in: *Verhandelingen van het Haagsche Genootschap* T. VII, p. 24 sq. Lucae et Evangelistae et *Actuum* scriptori tribuit: »eene groote naauwkeurigheid en het onmiskenbaar streven naar Chronologische juistheid.“ Quod ad Evangelium merito ad *Luc.* II: 2 et imprimis ad III: 1 provocans,

sit, quantum temporis postulent Ecclesiae fata *Act.* I—VIII descripta, certum hinc adversus nostram sententiam argumentum peti posse negamus. Quid nobis videatur nunc exponamus.

Primum ea, quae capite XII vs. 1—24 leguntur, nequaquam in auxilium vocanda esse censemus ad tempus accurate definiendum, quo iter (*Act. XI:* 30) suscep-tum fuerit. Quum enim universe in Actuum libro chronologicam diligentiam desideremus, formulae, qualis hoc loco occurrit: *κατ' έκείνον δὲ τὸν καιρὸν* haud multum tribuendum esse putamus, et ubi eo loco, quo ab uno ad alterum fontem, veluti hic ab Antiocheno ad Hierosolymitanum transitum facit Actuum compositor, occurrit, illam potius transeundi aut copulandi quandam formulam haberem¹⁾, quam statuere chronologicam notitiam ex eâ peti posse. Itaque unice stabilem ad hujus itineris tempus definiendum notam praebet fames ab Agabo praedicta, quae, quum, testante Flavio Josepho²⁾, procuratoribus Cuspio Fado et Tib. Alexandrino Palaestinam vexavit, quibus A° 48 successit Cumanus, rite cum Angero³⁾ circa annum 47 accidisse dicitur; quodsi jam Paulus atque Barnabas famis initio eranum Hierosolyma tulerunt, illorum iter probabiliter

quomodo hanc chronologicam diligentiam in Actibus perspicuam ex *XI:* 30 (*XII:* 1?) et *XVIII:* 2 probet, vix intelligo.

1) Cf. Schwanbeck, l. l. p. 259. Vaga admodum temporis definiendi formula Luecae usitata est: *ἐν ταῖς ἡμέραις ταύταις* v. c. I: 15, VI: 1, VIII: 1, XI: 27 al.

2) *Ant. Jud.* XX: 5, 2.

3) l. l. p. 43 sqq.

ad annum 46 (vel 45) referetur; Paulus ita (sequimur omnium fere computandi rationem) anno 32 ad Sacra Christiana transierit, et, quodsi cum Wieselero Christum a° 30 cruci affixum esse dicas, biennium primis ecclesiae fatis relictum habes¹⁾.

At vero deinde hoc ipsum, quod ab omnibus fere in computatione hacce sumitur, iter *Gal.* II: 1 memoratum quatuordecim annis post vel primum iter Hierosol., (*Gal.* I: 18) vel conversionem Pauli obtigisse, nititur satis incerta vocabulorum: διὰ δεκατεσσάρων ἔτῶν interpretatione, quae interpretantur: post 14 annos. Etsi enim haud negari possit praepositionem διὰ indicari posse, aliquid tempore quodam praeter-lapso, vel extrema illius parte evenisse²⁾; maxime usitata tamen atque vulgaris praepositionis significatio ea est, qua aliquid per aliquod temporis intervallum, durante vel labente tempore quodam, accidisse dicitur³⁾. Merito igitur nuperrime Agardhus⁴⁾ asseve-

1) Alias computationes alii inierunt, ut chronologicam difficultatem tollerent, quas omnes hie memorare parum refert, imprimis postquam et alii et Angerius maxime illas accurate recensuerunt; plerique autem justo celerius Pauli iter ad annum 44 propter illud: κατ' ἑκεῖνον δὲ τ. ναυγὸν retulerunt.

2) Cf. Winer, *Grammat. des neut. Sprachidioms*, edit. 5^{ae} p. 455 et Anger, I. I. p. 159 nota n.

3) Cf. Winer, I. I. p. 454: »Von der Zeit gesagt, heisst διὰ a) während (d. h. innerhalb einer Zeitlänge).“ Cf. *Act.* I: 3, XXIII: 31, *Luc.* V: 5, *Phil.* I: 26, *Marc.* II: 1 et *Matth.* XXVI: 61 coll. *Joh.* II: 19:

4) In libello: *von der Zeitrechnung der Lebensgeschichte des Apostels Paulus, und den Schwierigkeiten Sie zu bestimmen* von C. A. Agardh, aus dem Schwedischen von A. G. Holm. Stockholm 1847. pag. 35 seqq. Hic novam rationem init, ut annum conver-

ranter monuit, in hujus loci, cuius tantum momentum est ad definiendam Paulinae vitae chronologiam, interpretatione interpretis esse, antequam exemplis probat, praepositionem *διὰ subinde* idem significare quod *μετά*, demonstrare, cur huic loco *primaria usitator* significatio haud convenire possit; quod quoniam haud facile quis faciet, haec *vulgaris* significatio retineatur, quae ideo quoque se commendat, quod ita haud arbitrarie, sed de industria atque cum delectu a Paulo ἐπειτα διὰ δεκατεσσάρων ἑτῶν scriptum intelligimus, quum aliquot versibus supra (Gal. I: 18) ἐπειτα μετά ἐτη τοῖα scripserat¹). Totum igitur locum

sionis Paulinae inveniat: proficiscitur scil. a loco 2 Cor. XI: 30 ad XII: 9, collato Act. XXII: 17—21; Pauli hanc ἔπομον refert ad primum iter Hierosolymitanum (Gal. I: 18); conscripta altera ad Cor. epistola aº 58 vel 59, Paulus πρὸς ἑτῶν δεκατεσσάρων primum post conversionem Hierosolyma adiit, h. e. aº 44 vel 45, et ita aº 41 vel 42 ad sacra Christiana transiit. Miror in tota hac disputatione Pauli fugae Damascenae, quum urbs ab Artae Ethnaracha occuparetur, nullam rationem haberi, quum tamen ipso illo loco, unde in sua computatione proficiscitur auctor, memoretur (2 Cor. XI: 32, 33; et vehementer dubito, an hanc cum aliqua probabilitatis specie in annum 44 vel 45 deferre potuerit auctor, in quem annum incidit, si vera est memorata sententia. Recentissimae etiam chronologorum disputationes, v. c. Angeri l. l., qui Pauli conversionem ad annum 38, Mynsteri, qui in programmate: *Annalium Paulinorum adumbratio*, Havniae 1845, ad annum 33, Agardhi denique, qui ad annum 41 vel 42 eam retulit, luculenter probant, lubricam admodum esse omnem e chronologia argumentationem.

1) Unicum, quod, ut *διὰ i. q. μετά* significare probetur e N. T. Act. XXIV: 17, quo loco *vulgaris* praepositionis significatio retinetur, merito exemplum affertur, optime intelligi posse jam animadvertisit Agardhus

ita interpretamur, ut Paulus a Cap. I vs. 18 totam suam vitam Christianam a conversione ad illud tempus, quo epistolam scribit, percurrat et in tres veluti periodos partiatur, quas triplici *ἐπειτα* (I: 18; 21, et II: 1) indicat¹⁾: primam, qua Damasci et in Arabia versatus est, absolvit iter Hierosolymitanum; altera in Syriae atque Ciliciae regionibus commorationem continet; tertia denique periodus incipit a secundo itinere Hierosolymitano; triplex haec partitio secundum ea, quae peregit Apostolus, si secundum annos computas, in duas periodos dividitur, quarum una trium annorum, quatuordecim altera; utraque temporis nota itineri Hierosolymitano apponitur. Quot annis post conversionem prius iter suscepit diserte indicat: *μετά ἐτη τριαντα*, quoniam hoc in apologetica sua argumentatione summi momenti erat; quo autem anno alterum iter susceptum fuerit nihil intererat, hic autem illud potius quaerebatur, quoties per illud temporis spatium, quod a primo itinere ad

1. l. p. 35; ibi enim significat Paulus se, per plures annos h. e. saepius, iterata vice Hieros. adiisse.

1) Minus recte de Wette, *Comm. p. 16: νετειτα* (Gal. II: 1) führt von I: 18—21 weiter, wie dasselbe Adverb. I: 18 von v. 15—17;" quum ita adverbii *ἐπειτα* vs. 21 nulla ratio habeatur; neque tamen ideo *annorum* computatio eandem temporis consecutionem sequatur necesse est; si *διὰ* de temporis intervallo intellegis, tres illi anni (I: 18) separatis numerandi sunt, et temporis intervallum spectatur, quod a tertio inde anno post conversionem effluxit; quodsi vero *διὰ* idem erit quod *μετά*, *annorum* computatio a conversionis anno fieri poterit; ita Paulus vitam suam Christianam percurrent, in computandis hujus vitae annis, a nativitatis die identidem proficiscitur.

praesens conscriptae epistolae tempus effluxerat, Hierosolyma adierit, et ita argumentationi suae convenienter scribit: διὰ δεκατεσσάρων ἔτῶν, labentibus 14 annis, per 14 annorum spatium¹⁾. His igitur verbis non nota continetur ad stabiliendum alterum Pauli iter Hierosol.; sed accurate cognito conscriptae epistolae ad Galatas tempore, horum 14 annorum ope annum conversionis Paulinae constituere possemus. Epistolam ad Galatas probabiliter inter *Act.* XIV: 26 et XV: 1 conscriptam esse haec ipsa nos docuit disputatio; neque temere sane egimus conjicendo, concilium Hierosolymitanum mox insecurum fuisse; quum enim et Galatiae ecclesiae adeo turbatae essent, et Antiochiae τινων ἀπὸ Ιανόβου adventus Judeo-Christianorum cum Ethnico-Christianis consuetudinem fregisset, imo Paulum inter atque Petrum altercationi ansam dedisset, gravissimae rei dijunctionem haud diutius dilatam esse perquam sane probabile videtur; quum jam concilium Hierosolymitanum probabiliter ad annum 51 (vel 52) refera-

1) Hanc praepositionis διὰ significationem h. l. attendendam esse monuerant jam Oederus, Rambachius, Theilius et Schottus ll. ab Angero l. l. p. 160 ll., cui addatur Hugius, qui *Einl.* II. p. 310 vertit: »Binnen 14 Jahren kam ich...,” neque tamen in reliqua computatione ad hanc significationem attendit. Paulum dilucidius scripturum fuisse διὰ τούτων ἔτη δεκατεσσάρων facile concedo Winero *Comment.* p. 152 ed. 3ae, Paulo vero ita scribendum fuisse diserte nego: quodnam enim 14 annorum spatium ab ipso spectaretur, de eo Galatae certe dubitate haud poterant. Profecto si Wineri aliorumque interpretatione vera erit habenda, Paulus haud dubie dilucidius scripsisset: μετὰ δεκατεσσάρων ἔτη.

tur¹⁾), eodem anno epistolam ad Gal. conscriptam esse censemus, a quo anno, 17 annis deductis, Pauli conversio ad annum 34 (vel 35) referenda erit, adeo ut quatuor annorum spatium primis ecclesiae fatis relinquatur; quum praeterea tempus fugae Damascenae eundem conversionis annum tueatur: Paulus scilicet, quum iterum, tertio post conversionem anno Damasco digrederetur, insidias ab Aretae, Arabum regis, Ethnarcha sibi structas effugit²⁾; Aretas autem, Arabiae rex, Herodis Antipae sacer, Damascenam urbem occupasse videtur paulo postquam genero suo, qui uxorem repudiaverat, acre bellum intulerat ejusque exercitum penitus profligaverat³⁾; quum jam Antipas a Tiberio imperatore, cuius socius erat, auxilium petierat, hic Vitellio, Syriae procuratori, demandavit, ut poenas de Areta sumeret, et eum aut vivum aut mortuum sibi trade-

1) Cf. Anger, I. l. p. 114. coll. p. 87. Scilicet ultimum Pauli iter Hierosolymitanum ad annum 58 referendum est e computatione Angeri I. l. p. 106—113, si ab hoc sex annos cum dimidiato (cf. p. 87 sq.) deducis, ad annum 51 referendum concil. Hier.

2) 2 Cor. XI: 32, 33, coll. Act. IX: 24 seq. Has insidias non effugisse Paulum, quum prima vice Damasco in Arabiam digrederetur, et, cum Angero (I. l. p. 172), »eo movemur, quod Lucas, quae de hac fuga refert, tam arcte cum narratione de itinere illo Hier. connectit, ut Paulus Damasco relicta statim Hierosolyma petiisse existimandus sit;“ et, quod parum probabile est, Paulum, ut Arabum regis Ethnarcham effugeret, in Arabiam se contulisse; longe probabilius autem hunc Arabum Ethnarcham jam prius Paulo, quum in Arabia esset, infensum fuisse, fortasse propter turbas inde ortas, quod Judaei Pauli doctrinae resistebant. Cff. Süsskindius ac Wurmius, II. ab Angero, p. 181 nota q. II.

3) Flav. Joseph., Ant. Jud. XVIII: 5, 1, 3.

ret. Quum jam Vitellius, Petram adorturus, medio in itinere versaretur, nuntius de Tiberii morte ipsi affertur: continuo igitur exercitum in hiberna dimittit et ipse Antiochiam redit; hac ipsa opportunitate usum esse Aretam probabile est, ut Romanis noceret et ita Damascenam urbem, quae olim ad Arabiae ditionem pertinuerat ¹⁾, iis adimeret ²⁾. Tiberii autem mors a. d. XVII Kal. Apr. anni 37 contigit; eodem igitur hoc anno, exeunte fortasse, Damascus ab Areta occupata fuisse videtur, neque Pauli fugam multo serius contigisse censemus ³⁾, quoniam parum probabile est, Aretam urbem diu occupatam tenuisse, antequam Romanorum vindictam subiret; itaque, ab anno fugae Damascenae tribus annis deductis, idem prodit Paulinae conversionis annus 34.

Hac, quam proposuimus, temporum computatione difficultas, quam speciatim contra nostram sententiam e chronologia movent ⁴⁾, sublata videtur, et

1) Flav. Joseph., A. J. XIII: 15, 2. Cf. Anger, p. 175 nota q.

2) Haec sententia probabilitate se prae caeteris commendat. Cf. Neander, Gesch. d. Pflanz. I, p. 122 seq. et Winer. bibl. Realwörterb. s. v. Aretas I, p. 83 sq.

3) Ingeniosa est Baronii, Annal. eccles. ad ann. Calig. I § 4, ab aliis laudata, conjectura (cf. Anger, I. l. p. 181 nota q), Judaeos Pauli, civis Romani, tamquam Romanorum speculatoris, nomen Ethnarchae detulisse.

4) Nulla difficultate nostram computationem laborare haud sane dixerim; computatio autem, quae omnes, quas I. l. Agardhus enumerat, difficultates evitat, prouti nondum prodiit, ita, *tum* propter fontium atque notitiarum penuriam, *tum ob* dubiam sueper rationem atque interpretationem, haud facile umquam prodibit.

quum grammatica vocabulorum interpretatione nita-
tur, in illa potius acquiescimus, quam ut e critica
conjecturali 1) auxilium petamus.

1) Satis notum est, permultos interpres *Gal.* II: 1 pro δεσα-
τεσσάρων legere maluisse τεσσάρων, quae lectio in Eusebii
Chronico Alexand. Paschali mera conjectura est. Cf. Anger,
I. l. p. 128 et Fritzsche in *Fritzschi. Op. Acad.* p. 160 sqq.
Quodsi autem conjectura opus esset, malim pro δεσατεσσάρων le-
gere ἐνδέση, ita ut ΙΑ a librario mutatum foret in ΙΑ; »Alpha
nenim et Delta ductu non dissimili scribuntur tam in alphabeto un-
ciali quam in minusculo. Hac literae facile commutantur, nisi
»sensus verborum seriesque orationis manifesto doceat, utra intelligenda sit. Exempla hujus commutationis satis frequenter reperies
in citationibus librorum, quando literae istae pro notis numerorum
»usurpantur." Sunt verba Frieder. Jac. Bastii, in *comment.*
Palaeographica, addita Gregorii Corinthii et aliorum grammaticorum
libris de dialectis ling. Gr., quos edidit G. H. Schaefer. Lips.
1811, p. 763 sqq. Exempla vide in Bastii, *Ep. Crit. ad Bois-
sonadum*, p. 75 et 226; — notarum ad Gregor. opus laud. p. 155;
ap. Piersonum, *ad Moer. Att.* p. 445; ap. Friedemannum
ad *Strabonem* II, p. 330. Edit. Siebenkees, T. VII, p. 559 al.
Eadem literarum permutatio in inscriptionibus quoque creberrima
est, unde Aug. Boeckhius: »Si A," inquit, »in numeralibus
»praesertim notis haud raro pro Α lectum, non in Α mutare licet,
»nullus potest titulus restitui" quod de contrario quoque valet;
Praefat. ad *Corp. Inscript. Graec.* Vol. I. p. XXVI. Neque sane
creberrimam hanc permutationem miraberis, si simillimum utrius-
que literae ductum in codicibus inspexeris; cf. v. c. varia harum
literarum specimina, ap. Montfaucon, *Palaeogr. Gr.* p. 188,
122, 152, 214 sqq. p. 347 al., uti et in tabula aenea 1, addita
Bastii laud. comment. In *Voluminibus quoque Herculaneisibus*,
Oxonii excusis, unde utriusque literae forma in antiquiore scripturae
genere optime cognosci potest, hae literae saepius permutantur,
ita Α pro Α bis, Α pro Α ter legitur, locis indicatis ab E. Gros
in *Catalogo literarum permutatarum in Herc.* Voll., quem apposuit
operi, cui titulus: *Philodemi rhetorica ex Herculaneensi papyro litho-*

Novum autem simul argumentum illudque minime contempnendum praebet nobis haec computatio,

graphicæ Oxonii excusa restituit, latine vertit etc. E. Gros. Paris. 1840 pag. CXXV et CXXVI, quam pag. CXXVII plurima exempla enumeret literæ I in scriptura evanidae, nullum autem supervacuae. Quod omnibus omnino Codd. h. l. *δεκατεσσάρων* plene scriptum legatur, conjecturæ temeritatem haud adeo auget; in ipso enim autographo, quam parum clare scriptum inveniretur, postquam semel de vera lectione dubitabatur et lectionem *ΙΑ* verisimiliorem constituerant, haec in omnia epistolæ exempla facile manare potuit; imprimis quoniam ipsius Pauli in fine epistolæ VI: 11 testimonium, Paulum hand magnam *græce* scribendi peritiam atque usum habuisse, ideoque hanc epistolam, quam solam propria manu scripsit, grandibus atque deformibus adeo literis scripsisse confirmat (Cff. Winerus et Rückertus ad h. l. Paulus epistolam semper dicit *ἐπιστολὴν*, numquam *γράμματα*). Quaestione autem cardo eo vertitur, utrum Graeci nomina numeralia per compendium scripserint, necne. Numerorum consignandorum rationem a literarum in alphabeto serie petitam in *usu quotidiano* obtinuisse affirmat I. Franzius in *elementis epigraphicis Graecae*, Berol. 1840 p. 348; alphabeti series, in qua Bau s. *διγράμμα*, (Cf. Franzius p. 16 et 349) sexta et ita decima est *ϛιν* monumentis publicis secundo ante Christianam epocham saeculo comparet" (l. l. p. 350); in *Graecis subscriptiōnibus*, quae leguntur sub *papyris Aegyptiacis Acad. Berolin.* No. 36—41, et descriptae sunt ab J. G. Droysen in *Museo Rhenano* III. p. 491, sqq., collata tabula aenea ad pag. 556, in *singulis* igitur his subscriptionibus, quae intra annos 182 et 102 a. Chr. n. scriptæ fuerant, nomina numeralia per idem compendii genus scripta occurrunt, neque aliter in *Papyris Graecis Regii Taurinensis Musei Aegyptii* editis atque illustratis ab Amedeo Peyron P. I. Taurini 1826, ubi vid. v. c. Pap. I. lin. 1 et 16; pag. 2. lin. 3 et 9; pag. 5 lin. 30, 31, 32; pag. 7 lin. 14 et 15 alibi, uti et in *Papyris Graecis Musei Antiquarii publici Lugduni Batavi*. editis a C. Leemans, 1843. v. c. Pap. A, lin. 4 et 8; Pap. B, columna 1, lin. 20; col. 2, lin. 10, 14; in his *Papyris non qui-*

quae sententiam nostram haud parum commendat. Quodsi iter Gal. II; sqq. idem est cum itinere *Act.* XI: 30 memorato, Paulus circa annum 46 a reliquis Apostolis tamquam Apostolus agnitus fuit (*Gal.* II: 7—9); quod multo probabilius est, quam ut hoc quinque demum annis post factum esse statuamus. Quum scilicet duodenarius Apostolorum numerus primis Christianis sanctus fere esset adeo, ut ipsi Apostoli post Judae Iscariothae mortem, necessarium ducerent continuo alium eligere, qui illius locum in Apostolorum collegio occuparet (*Act.* I: 15 sqq.);

dem omnes numeri per compendium scribuntur (cf. v. c. Musei Taurinensis Pap. I. pag. 6. lin. 5. *των πεπαχωτων εννεα*, pag. 7 lin. ss. *δραχμας μηνιας*); sed, quod ad hanc quaestionem magni refert, per compendium scribuntur, quantum inspicere mihi licuit, ubi annis apponuntur. In *Voluminum Herculaneum* parte, quam explicuit E. Gros, nullum numerum inveni nisi *οἱ δέκα ἀρδης* plene scriptum, quod tamen, quum de collegio dictum est, nihil probat; reliqua volumina consulere haud suscepi, illud unice animadverto, in voluminum titulis numeros per compendium scriptos esse. Cf. N°. 163, 207, 1007, 1027, 1050, 1151, 1423, 1538, 1672.

Quodsi in Epistolarum Codicibus, quantum scio, numeri semper plene scribuntur, librarios hac in re libere egisse, cum plene, tum per compendium scribentes, suadet Codicum Evangeliorum collatio; ita enim in *Cod. Cantabrigiensi Bezas*, cuius prae caeteris antiquitatem, haud scio an immerito, praedicant Kiplingius et Eichhornius, numeri saepe per compendium scribuntur, ubi in *Codd. Alexandrino atque Ephratmi Syri* rescripto plene scripti leguntur. Cf. v. c. ad loca: *Matth.* X: 1; XIV: 20; XX: 17; XXV: 15; *Luc.* II: 42. Quodsi ita haud facile temerariam conjecturam quis dicet, quam proponimus, *undecim annos deducas ab anno itineris*, *Act.* XI: 30 memorati, 45 v. 46, annus conversionis erit 34 v. 35 p. Chr. n.

intelligimus, post mortem Jacobi majoris, ab Herode Agrippa circa a. 44¹⁾ occisi, Apostolos, postquam mortuo Herode Hierosolyma e fuga redierant, denuo ad supplendum collegarum numerum processisse. Hac igitur ipsa opportunitate, e nostra sententia, Paulus, postquam jam Tarsi et Antiochiae in commendando Evangelio diligenter occupatus fuerat, ab iis tamquam Apostolus inter gentes agnitus et in Apostolorum collegium cooptatus fuit, quod ubi factum erat, ab Antiocheno Ecclesia dimissus fuit Paulus cum Barnaba in Asiam Minorem et ita continuo tamquam Apostolus inter gentes publice processit (*Act. XIII sq.*).

§ 8.

Pauli atque Petri altercationi, Gal. II: 11 memoratae, e proposita sententia lux affertur.

Tandem nostrae sententiae consequens est, ut Pauli atque Petri altercationem post iter, *Act. XI: 30* memoratum, sed ante concilium Hieros. (*Act. XV*) accidisse statuamus, et quidem, ut nobis videtur, eo tempore, quo Paulus Antiochiae degens epistolam ad Galatas scripsit. Petri agendi rationem vix explicari posse, si statuas illum continuo post concilium Hierosol., in quo cum Paulo eandem caussam acriter tuebatur, Antiochiae in Pauli vituperium incurrisse²⁾,

1) Exente anno 43 vel ineunte 44. Cf. A n g e r l. I. p. 40 sqq.

2) Pauli atque Petri hanc altercationem accidisse brevi post Pauli

fatentur etiam illi, qui iter *Gal.* II memoratum cum tertio itinere (*Act.* XV) convenire censem. Quodsi vero, pro rato habens iter *Gal.* II idem esse cum itinere *Act.* XV, ne Petri indeoles indelebili inconstantiae atque simulationis macula adspergatur, statuas, Paulum hie temporum consecutionem non curare, et ita ejus cum Petro altercationem huic itineri antecedere potuisse 1); hunc gravissimum committis errorem, quod, quum imago alicujus viri libere informanda sit ex omnibus, quae de eo accepta habeas, neque curandum tibi sit, utrum formosa, an minus procedat, nunc relata adaptes ad imaginem quam tibi, nescio unde, informaveris, errorem nostro quidem loco eo graviorem, quoniam *et ipsa Pauli*

atque Barnabae Antiochiam redditum statuunt plerique interpretes (*Act.* XV: 30—39); Schrader, *der Ap. Paulus*, I, p. 126, se-riore tempore (*Act.* XIX: 20), quod iter omiserit Lucas, Petrum una cum Paulo Antiochiam abiisse censem; Neander, *Apost. Zeitalt.* I, p. 278 sqq. ad *Act.* XVIII: 22 altercationem refert, praeēunte Koehlero, *Versuch ueber die Abfassungszeit der epistol. Schriften des N. T.* p. 33 sqq.; qui cum aliis participium ἀναβάται v. 22 de itinere Hierosol. interpretatur. Cf. Schott, *Erörterung einiger wichtigen chronol. Punkte in der Lebensgesch. des Paulus*, § 5, 7, 8.

1) Veluti nuper da Costa, l. l. p. 145; praeēuntibus Augustino, Grotio, Calovio, Hugio, Schneckenburgero, II. a Wettie in *comm.* p. 26 laudatis, uti et a Basnagio, *annal. politico-eccles.* T. I. p. 592 et Semlero in *proleg. paraphraseos* huj. ep. p. 60, quamquam in ipsa paraphrasi locum *Gal.* II: 11 sic vertit: »accidit, — ut Petrus aliquo tempore post res Hierosolymis gestas veniret Antiochiam.“ — Minus recte ad Paleyi auctoritatem provocat da Costa. Cf. *de Gids* 1847, No. 8, p. 609.

verba Petri timiditatem indeque ortam inconstantiam et simulationem testantur, *et*, si quo alio loco, hoc prae caeteris, Paulus res suas secundum temporum seriem digerit. Illud autem prae caeteris attendas velim, quomodo, Petrinae indolis servandae cura abductus, Paulum, qui caeteroquin ubivis tamquam dexter Christi doctrinae suaequae caussae contra adversariorum insidias prodit propugnator, hic miserum tibi informes militem, qui armis, quae ipsi praesto sunt, non tantum non utatur, sed potius, quibus ipse oppugnetur, arma adversariis suis porrigat. Concesso enim *Gal.* II: 1 convenire cum *Act. Cap. XV*, et altercationem illam ante illa tempora locum habuisse; quomodo, queso, Paulus adversarios oppugnans, qui ad reliquorum Apostolorum auctoritatem provocabant, nisi prorsus ineptum eum dicas apologetam, utramque hanc rem eo vinculo inter se nectere poterat, quo h. l. nexae occurrunt? Quid? dissensum suum cum Petro vividis coloribus pingens, omnibus suis numeris absolutum ejusdem Apostoli assensum (*Act. XV: 10*) palam pronuntiatum tacet? vituperium a se in Petrum prolatum referens hujus vituperii effectum, Petri illam poenitentiam ab ipso haud celatam ¹⁾), non memorat?

1) Attendantur quomodo Petri illa indeoles ad lapsum prona, eadem autem, postquam erroris convicta erat, ad poenitentiam parata, hic quoque egregie prodeat. Pulere da Costa, I. I.: »het »is juist de bestraffing in aller tegenwoordigheid door eenen jongeren mede-Apostel, dien Petrus ootmoedig verdragen en ter »harte genomen hebbende even grootmoedig als ware het bezegelt »door de verdediging juist van het Paulinische gevoelen in zijne »redevoering te Jeruzalem.“

Nonnullos, a Jacobo missos (*τινας ἀπὸ Ἰακώβου* II: 12), Petrinae simulationi ansam dedit dicit Paulus, et ita Jacobum etiam in alia omnia a se discessisse suspicionem apud Galatas facit; ipsum autem Jacobum mox Pauli doctrinam publice affirmasse (*Act.* XV: 19 sq.), et diserte negasse, istos viros ullum a se mandatum accepisse (l. l. vs. 24) non refert¹⁾? Quid plura? si ita statuis, aut Paulum miserum Apologetam fuisse, aut Lucae nullam fidem historicam tribuendam esse fatearis, ubi Petrum atque Jacobum tamquam Paulinae sententiae patronos proponit. At vero meliora nos edocuit haec ipsa nostra disputatio; brevi conspectu igitur videamus, quam apte omnia concinant.

1) Memoratam inter Apostolos altercationem in *Actibus* haud inveniri nostra quoque sententiā etsi haud explicetur, probabilior tamen hujus silentii caussa reddi potest; quodsi enim haec alteratio acciderit tempore post *Act.* XV, in illa Actuum parte, quae luculentter primariorum scriptoris consilium prodit Pauli acta memorandi, hujus rei silentium multo magis miramur, quam in illa parte, quae caput XV praecedit; haec enim e fonte petita videtur, in quo non Paulus, sed Barnabas primas partes ageret, fortasse e Barnabae biographia; Barnabas autem in hac altercatione secundarias tantum partes egerat, et ita, quum a Paulo diserte memoratur, quoniam Galatis notus erat Barnabas, Lucae hac de re silentium quodammodo explicari possit. Cf. Schwanbeck, l. l. p. 235.

§ 9.

*Brevi conspectu indicatur, quam apte, nostrae sententiae
convenienter, omnia explicentur, adeo ut ea, quae
Lucas refert in Actibus et Paulus in Epistola ad
Gal., se invicem suppleant atque illustrent.*

Postquam post Herodis Agrippae persecutionem Hierosolyma stabilis Apostolorum sedes esse desierant, Jacobus, Domini frater, ibi remanserat; hic autem, qui diu sacris Judaeis addictus manserat, et, ut videtur, ultimis demum Jesu fatis sibi persuaserat hunc promissum esse Messiam ¹⁾, Judaeorum mores atque ceremonias indeque ortas praejudicatas opiniones haud facile exuit. Facile ita intelligitur, postquam solus relinquebatur Jacobus Hierosolymis, neque amplius ibi aderant, qui divina patefactione jam meliora edocti erant ²⁾, ecclesiae socios iisdem moribus atque opinionibus addictos mansisse; quum contra Antiochiae in Syria gentilium, qui ad sacra Christiana convertebantur, numerus in diem augeretur, liberâ Dei

1) *Joh. VII: 5* fratres Domini nondum fidem ipsi habuisse dicuntur; *Act. I: 14* autem creditibus annumerantur.

2) Quod de Petro quodammodo valet, Cornelii conversione meliora edocto (*Act. X*); huic autem continuo sese opposuisse Hierosol. ecclesiae socios docet *Act. XI: 1, 2*; postquam Petrus patefactionem, quae sibi contigerat et quaecunque acciderant, narraverat, nihil quidem illi opponere poterant (*ἵστοριαν* v. 18); imo Deum laudibus celebrabant, dicentes: ἄγα γε καὶ τοῖς ἔθνεσιν ὁ Θεὸς τὴν μετάνοιαν ἐδωκεν εἰς ζωήν.

gratiā, quae a legis Mosaicae jugo credentem liberat, iis annuntiata. His Christiani Palaestinenses invidebant; quum igitur Paulus et Barnabas, principes illi gentilium Apostoli, Antiochiae degebant (*Act. XIV: 26—28*), fuerunt, qui Hierosolymis Antiochiam adierint, ut horum doctrinam turbarent, a Jacobo se missos dicentes; Jacobi veneratio Petri, Barnabae aliorumque simulationi ansam dedit; ipseque Paulus etiam, testante ipsa *ad Gal.* epistola (II: 12 τινας ἀπὸ Ἰακώβου), a Jacobo missos illos habuit. Sunt autem hi iidem, quos Lucas (*Act. XV: 1* τινες κατελθόντες ἀπὸ τῆς Ἰουδαιᾶς memorat ¹), et concilio Hierosolymitano ansam dedisse docet; neque mirum sane; res enim urgebat: quomodo, quaeso, recenter conversi fidem incolumem servare poterant, si hic Mosaicae legis patronos, Jacobi nomine affirmantes audiebant: ὅτι οὐ μὴ περιτεμνήσθε τῷ ἔθετο Μωϋσέως, οὐ δύνασθε σωθῆναι; Petrum adeo, Barnabam aliosque, horum veneratione atque timore percusos, simulantes adspiciebant; hīc Paulum firme asseverantem: ὅτι οὐ δικαιωθήσεται ἐξ ἔργων νόμου πᾶσα

1) Diserte Ecclesiae Hierosolymitanae socii, praeante Jacobo, in decreto (*Act. XV: 24*) negant, hos viros a se dimissos esse (οἵς οὐ διεστελέμεθα); Paulus in Epistola ad *Gal.* II: 12 illos a Jacobo missos dicit, ignorabat enim adhuc illos nullum a Jacobo accepisse mandatum, hanc simplicem ob caussam, quod epistolam ante concil. Hieros. scripsit; qui epistolam ad Galatas post concil. Hier. scriptam dicunt, videant quomodo et hoc et Petri metum interpretentur. Testentur ipsi commentarii quantum haec res interpres vexaverit. Cf. Schott in *Comm.* ad h. l. p. 387 sq. et de Wette l. l. p. 26, quaeque ab his aliorum memorantur interpretationes.

σάρξ· ὅσοι γὰρ ἐξ ἔργων νόμου εἰσιν, ὑπὸ κατάραν
εἰσιν· Χριστὸς δὲ ἡμᾶς ἐξηγόρασεν ἐκ τῆς κατάρας τοῦ
νόμου, γενόμενος ὑπὲρ ἡμῶν κατάρα, ἵνα δὲ πε-
ριτέμνησθε, Χριστὸς ὑμᾶς οὐδὲν ὀφελήσει. Rei
Christianae necesse erat, ut hac de re ecclesiae ante-
signani convenienter et quid verum esset, quid
minus palam pronuntiarent. Dimittuntur igitur ab
Ecclesia Antiochena Paulus, Barnabas et alii quidam
Hierosolyma, ibique in solemni concilio Ecclesiae ante-
signani, a divino illo Duce, Spiritu sancto, ab Ec-
clesiae Capite promisso, ducti sententiam enuntiant,
quae, utpote unice vera, cum variis communica-
retur ecclesiis, falsos doctores auctoritate reliquo-
rum apostolorum, quam adversus Paulum proferebant,
privaret, et pacem, horum studiis turbatam, resti-
tueret. Neque successu caruit Hieros. hocce decre-
tum, nam ét Antiochiae in Syria quassatis Christiano-
rum animis gaudium attulit (*ἀναγνόντες δὲ, ἐχάρησαν*
τῇ παρακλήσει Act. XV: 31), ét Derbae, Lystrae
atque Iconii, ut nobis videtur, in Galatiae urbibus,
ubi eadem atque Antiochiae turbae erant, Christiano-
rum fides confirmabatur, et ecclesiae florebant
(*αἱ μὲν οὖν ἐκκλησίαι ἐστερεούντο τῇ πίστει, ναὶ*
ἐπερίσσευον τῷ ἀριθμῷ παθ' ἡμέραν Act. XVI: 5).

§ 10.

*Quomodo Pauli doctrinae, in Ecclesia primaeva contra
errores, e Judaica religione oriundos, certanti, sensim
victoria parata sit, ostenditur.*

Tota, de qua hic egimus, quaestio primum cernit

Ecclesiae Christianae certamen contra errores, qui ex Judaica religione in suam irrepserant ditionem, egregie nos docens, quomodo summus Ecclesiae Procurator per varia rerum pericula illam duxerit, et haec ipsa adhibuerit, ut et Apostolis et omnibus Ecclesiae sociis quid verum sit, quid minus, persuaderet, veraeque doctrinae in Ecclesia sua victrices partes pararet. Ipsa rerum necessitas, ut caussam decernerent, urgebat; per certamen atque luctam Spiritus sanctus et Apostolos et omnes Ecclesiae socios ad illud, quod unice verum est, ducebat; hoc ipso certamine res, de qua agebatur, ab omni parte considerata, magis magisque illustrabatur, explicabatur et tandem decernebatur; postquam ita in contrarias partes disputatum erat, consensus oriebatur tam Apostolorum inter se, quam reliquorum Ecclesiae sociorum, qui persuasioni nitebatur (*ἐδοξεν ἡμῖν γενομένοις δύο θυμαδόν*)¹⁾; sibique concisi Spiritum sanctum esse, qui ad firmam hanc persuasio- nem ipsos adduxerat, sententiam hoc consensu prolatam tamquam decretum, ab ipso Spiritu sancto sancitum, cum variarum Ecclesiarum sociis communica- bant (*ἐδοξε γὰρ τῷ ἀγίῳ Πνεύματι παῖς ἡμῖν*)²⁾. Vere enim da Costa³⁾, cuius de Pauli atque Petri

1) *Act. XV: 25*; recte Meijer, *Krit. Exeg. Komment.* neb. d. N. T. II. 3, p. 207 hunc locum ita interpretatur: »nachdem wir einmütig geworden waren,“ collatis iis, quae annotat ad *Act. I: 14*: »δύο θυμαδόν“ bezeichnet kein bloss äusserliches Zusammen- sein, sondern, wie Luther richtig hat: *einmütig*. So durchgän- gig in den *Act.* und ad *Rom. XV: 6*.“

2) *Act. XV: 28*.

3) I. I. I. p. 151.

altercatione verba hic ad totius certaminis exitum applicare juvat: »Uit geheel dezen strijd en zijne ver-»effening leeren wij wederom iets kennen van den aart »der Apostolische onfeilbaarheid. Geen onfeilbaarheid »als van een gezag in de Apostelen of hun te-zaam-»vergadering ¹⁾ berustende, was hun toebedeeld of »toegezegd, of als geen werktuiglijk medegedeelde, »ingestorte wetenschap ter beslissing van alle leer-»punten of levensvragen. Nee! maar uit de bot-»sing zelve der gevoelens, der richtingen, der per-»soonlijke opvattingen wordt door in- en medewer-»king van dien beloofden Leidsman in alle waarheid »den Heiligen Geest, de vraag van alle zijden toe-»gelicht, opgehelderd, beslist, de waarheid aan den »dag gebracht en vastgesteld. Ook voor de Aposte-»len was de waarheid een *resultaat* van strijd, van »worsteling, van verschil en oneenigheid somtijds zelfs; »maar dat *resultaat* dan ook objectieve absolute waar-»heid, onfeilbare waarheid.”

Convenienter iis, quae disputavimus, concedimus Bauro, triumviros illos Jacobum, Petrum atque Joannem e Pauli descriptione (Gal. II) nondum ad

1) Recte; haud enim *quoniam* una convenerant Apostoli, Spir. s. cum iis communicabatur; haud in concilio, ut ita dicam, Spiritus sancti sedes cernebatur. Docet etiam totius certaminis exitus, quam alieni fuerint Apostolorum singuli a Romano-Catholicorum errore, quo unus praeceteris omnibus auctoritatem sibi arroget, ac decreta veluti de tripode enuntiata reliquis imponat; contra coniunctis in concilio de caussa disserendum esse statuerunt, persuasum sibi habentes, se a Spiritu s. haud derelictum iri; auditis autem variis partibus, hunc singulis de vero persuasurum esse, et plurimum consensum pluris valere quam unius effatum.

illum persuasionis gradum pervenisse, quo Petrus atque Jacobus in concilio Hieros., si Lucae (*Act. XV*) fidem habemus, pervenerant. Vera insunt illius verbis, licet paulo nimium Judaici studii illis tribuat, ubi: »Sie konnten,” inquit ¹⁾, »den vom Apostel »Paulus gegen Sie geltend gemachten” (iis exposita, cum iis communicata: *ἀνεθέμην* — — — *τοῖς δοκοῦσιν Gal. II: 2.*) »Grundsätzen und Thatsachen »nichts Widerlegendes entgegenhalten, und doch konn- »ten Sie sich auch von dem beschränkten Standpunkte »des Judenthums, auf welchen Sie bisher stehen ge- »blieben waren (excepto Petro), nicht losmachen;” eatenus certe quod suum ipsorum munus nondum ultra Judaeae terminos extendebat. Communionis dextram Paulo, qui inter gentes Evangelium annuntiaret, porrigentes, quum tamen unice *τὴν περιτομὴν* sibi designatam esse putarent, luculenter ostendebant, se adhuc discrimen facere inter *τὴν ἀκροβυστίαν καὶ τὴν περιτομὴν*, ne cum de Evangelio omnibus pariter annuntiando persuasum sibi habere. Petrus quidem jam Cornelio, Romanorum Centurioni, Evangelium e mandato Divino annuntiaverat, neque tamen ita ad plenam intelligentiam pervenerat, per Christi Evangelium omne gentes inter atque Judaeos sublatum esse discrimen; nam et Cornelius a reliquis gentilibus eatenus diversus erat, quod, ut videtur, cum familia sua portarum proselytis annumerabatur ²⁾, et

1) I. I. p. 127.

2) Cf. Neander, *Gesch. d. Pfl. u. Leit.* I, p. 89 et Olshau-

Petrus hoc mandatum, nisi pro speciali habuerit, quod Cornelii personam unice spectaret, non ea certe extensione accepit, qua Paulus salutis universitatem mox proposuit; in defensione certe, quam Hierosolyma redux *τοῖς ἐν περιτομῇσ* dedit (*Act. XI*), non diserte omne discrimen gentes inter atque Judaeos sublatum esse profitetur; sed potius, unice quomodo Dei mando to hac in re obsecutus fuerit, et quaenam ipse Deus per Spiritum sanctum operatus fuerit exponit, additis verbis illis: *ἔγώ δὲ τις ἡμην δυνατός μωλύσαι τὸν Θεόν;* (vs. 17), quae verba sunt Dei opera venerantis, neque tamen altiorem sensum, qui in hac Cornelii conversione latebat, plane perspicientis; atque quodsi *τῶν ἐν περιτομῇσ* responsum aut potius miratione plenum gratiae Divinae praeconium: *ἄλα γε ναὶ τοῖς ἔθνεσιν οὐ Θεός τὴν μετάνοιαν ἔδωκεν εἰς ζωήν* (*XI: 18*), audit a Petri narratione, suspicionem alicui mouere possit, ac si illi tunc jam de sublato discrimine persuasum sibi habuerint; observet ille velim quod mox, ubi audierant in Syria, Antiochiae maxime, plures Hellenistas ad sacra Christiana accessisse, Judaeo-Christianus Barnabas continuo ab Ecclesiae Hieros, sociis illuc emittebatur (*Act. XI: 22*)¹⁾, hoc satis ostendere, quantam sollicitudinem Ethnicorum ad sacra Christiana accessio iis tunc etiam offerret. Alia etiam accidere oportuit, antequam

sen in comment. ad h. l. Hinc quoque Petrus *Act. X: 35* *ἐν παντὶ ἔθνει*, inquit, *ὅ φοβούμενος αὐτὸν* (*τὸν Θεὸν*), *ναὶ ἐργαζόμενος δικαιοσύνην, δεκτὸς αὐτῷ ἐστιν*; licet igitur non anumerandus erat *τοῖς νιστές Ιορδαίλ* vs. 36, unus tamen erat *ἐν τῷ φοβούμενων* vel *σεβομένων τὸν Θεόν*.

1) Cf. Schliemann, I. l. p. 387.

praejudicatas, e Judaismo resides, inveteratas opinio-
nes exuerent non tantum universe Ecclesiae socii, sed
seniores etiam Apostoli¹⁾). Valuit huc imprimis, mo-
derante Deo, persecutio, qua mox Hierosol. Ecclesiam
vexavit Herodes Agrippa; ita enim fuga dispersi Apo-
stoli Evangelii in gentium regionibus successum prae-
sentes adspicerunt, quantaque Deus non Hierosolymis
tantum sua ipsorum, sed inter gentes etiam Pauli
imprimis atque Barnabae opera operaretur sibi per-
suaserunt; et mox, ubi fame vexabatur Palaestina,
pecuniarum ex Antiochena ecclesia collatio Ecclesiae
Hieros. sociis persuadere potuit, amorem Christianum
inter gentes etiam egregios fructus ferre. Valuit huc
Petri Antiochiae in Syria commoratio, ubi ingentem
adeo Evangelii successum ita adspexit, ut de pariete,
gentes inter atque Judaeos per Christum sublato, haud

1) Hinc etiam intelligimus unice Sadducacos, non Pharisacos,
primorum Christianorum adversarios fuisse (*Act. IV*: 1, 2, 16;
V: 17, 18); habebantur scil. Christiani Judeorum secta, et reliqui
Judei tantum non nullum Sadducaeis auxilium contra Christianos
ferebant, sed ita ab horum parte stabant, ut templi praefectus cum
ministris nullam Apostolis vim facere auderent, metuentes, ne a
populo lapidibns obruerentur (*Act. V*: 26 coll. *IV*: 21, 33); hinc
quoque intelligimus Gamaliëlem, Pharisaeum, in synedrio callidi-
tate sua Apostolorum necem vetuisse (*Act. V*: 34—40). Vere Ehrar-
dus: »Wir lesen (prima periodo ante Stephani mortem) noch nichts
von einer Opposition der Pharisäer; nur die Sadduäer sind feind-
lich und fanatisch; ihnen galten die Nazarener mit dem Aufer-
standenen als *Ultrapharisäer*.» *Das Evang. Joh. und die neueste Hypothe-*
these über seine Entstehung. Zür. 1845. p. 90. — Quantum autem
mutatus erat post decennium Judeorum in Christianos animus,
quum Herodes, necato Jacobo, ἵδωρ ὅτι ἀγεστόν έστι τοῖς Ιου-
δαίοις (*XII*: 3) Petrum etiam in carcerem conjiceret!

diutius dubitare posset, ideoque, testante ipso Paulo, cum gentibus epularum communione uteretur, horumque vivendi rationem sequeretur¹⁾ (*Gal.* II: 12 μετὰ τῶν ἐθνῶν συνήσθιεν, v. 14: ἐθνικῶς ζῆσ καὶ οὐκ Ἰουδαιζᾶς)²⁾. Valuit huc denique ipsa Petri simulatio; ea enim erat Petri indeoles, quae in lapsum quidem prona, eadem autem ad poenitentiam agen-

1) Ebionitarum traditiones, quae Petrum, Mattheum et Jacobum unice seminibus atque oleribus, non carne nec vino usos esse testentur, (testibus Clemente Rom. *Hom.* 12: 6. Hegesippo ap. Euseb. *H. E.* II: 23. Clemente Alex. *Paedag.* II: 1. Gregorio Nazianz. περὶ φιλοπτωχίας, p. 241, edit. Colon. 1690. Augustino, *adv. Faustum* 22: 3. Cf. Schleemann, l. l. p. 117 et 428 sq.) omni fundamento historico destitutos esse haud adeo dixerim. Pariter ac Romae Judaeo-Christianiani erant, qui oleribus unice vescentur, quum carnem ad τὰ κοινὰ καὶ ἀκάθαγτα referrent (*ad Rom.* XIV: 2, 14, 20, 21. Cf. Baur, l. l. p. 384 sq.), quam opinionem ex Judaismo secum duxerant, inter Apostolos quoque fuisse, qui huic faverent, haud ita ex tripo negari potest; Petri certe responsum *Act.* X: 14 ita generaliter datum fuit, ut omnium animalium carnem ad τὰ κοινὰ καὶ ἀκάθαγτα ab eo relatam esse haud immerito suspiceris; sed ipsum Petri exemplum, quem ex Actibus Apost. et ipsa Pauli Epistola (*Gal.* II: 11 sqq.) deinceps meliora edoctum fuisse novimus, ostendit, quomodo Ebionitae, ut postea suae sententiae praesidium quaererent, totam Apostolorum effigiem veluti truncaverint, et e traditione quae sibi placerent unice protulerint, reliquorum nulla ratione habita.

2) Hoc imprimis urgendum est contra illos, qui seniores Apostolos *semper* Judaeo-Christianorum erroribus favisse contendant, ipsam epistolam ad Galatas Petrinae mentis a Judaeo-Christianismo ad Paulinismum progressionem probare; Petrum scil., Antiochiae ἐθνικᾶς ζῶντα (II: 11 sqq.), jam minus Judaismo obstrictum esse, quam qualis Hierosolymis ex eadem Pauli descriptione (*Gal.* II: 1 sqq.) processerat.

dam erroremque palam profitendum semper parata esset; neque dubitamus, quin a Paulo jure vituperatus Petrus, Hierosolyma reversus, primus fuerit, qui in Hierosol. Ecclesia Judaicos errores oppugnaverit, et Jacobum, Ecclesiae antistitem, meliora docuerit; imo, ubi mox (*Act. XV*) in publica concione gravis hac de re ageretur disputatio, Petrum nobilis cum fervore Pauli caussam agentem, quin Jacobum et reliquos ecclesiae socios, quoad rei cardinem, publice illi assentientes audimus. Non igitur in eam Bauri sententiam pedibus ire possumus, quam deinceps proponit, ac si ab eo inde tempore, quo communionis dextram Ecclesiae columna Paulo atque Barnabae porrexerant, duae *in Ecclesia* extiterint Judaeo-Christianorum factiones, quarum severior una sine circumcisione nullam neque Judaeo-, neque Ethnico-Christianis salutem dari constanter contendens, Paulo acriter sese opposuerit et a gentilibus, qui jam ad sacra Christiana transierant, legis observationem petierit; laxior altera, quae, licet cum severiore eandem doctrinam mente foveret, non tamen ita constans fuerit, et, postquam antesignani, triumviri illi Jacobus, Petrus et Joannes, communionis dextram Paulo porrexerant, haud amplius pro doctrina sua pugnare potuerit, atque ita unice Christianis, e Judaeis oriundis, legis observationem imposuerit. Paucis quaenam nobis Ecclesiae facies, post conscriptae epistolae ad Galatas habitique concilii Hierosolymitani tempora fuisse vindetur indicandum. Postquam universe *licitam*, *ad salutem* vero *necessariam* nemini, neque Ethnico-, neque Judaeo-Christianis, declaraverant legis observa-

tionem, et ita Christianis e Judaeis πάτρια ἔθη sequi permiserant, ea vero Christianis e gentilibus impo-nenda esse negaverant Apostoli, qui non turbatam censebant fidei Christianae unitatem, si una ecclesiae pars Judaeorum ceremonias ¹⁾ observaret, altera minus; Pharisaeorum Judaismus, qui Ethnico-Chris-tianis legis jugum imponebat, haud amplius irrepere potuit in Christianorum inter gentes coetus, prouti antea in Galatiae coetibus acciderat; nunc autem in uno eodemque coetu fuerunt, et qui amplexo Evangelio Judaeos mores etiamnunc sequerentur, et qui ab omni ceremoniarum observatione liberum Evangelium amplectentur. Talibus in coeti-bus fuisse vel Judaeo-Christianos, qui religiose πά-τρια ἔθη observarent, vel qui, perspecta mox ceri-moniarum vanitate, omne hoc jugum exuerent, neque igitur liberos suos circumcidi curarent, imo eo procederent ut praeputium arte attraherent (*ἐπισπασ-μός*); vel ab altera parte Ethnico-Christianos, qui alto supercilio Judaeo-Christianorum religiositatem

1) Notum est, quanta fuerit Judaeorum religiositas in legis ceremoniis observandis post captivitatis tempora; harum unice ob-servationem postulantes, se legis jura tueri putabant; ita amissu nucleo putamina reliquerant. Tales errores, qui per saecula altos in gente radices egerant, non drepente evelli poterant; itaque sa-pienter ceremoniarum observatio Judaco-Christianis permissa fuit, ne multo plures etiam Christi crucem repudiarent, hac demum accepta aliquando sibi persuasum haberent: διν οὐκ ἔστι δίκαιος οὐδὲ εἰς, neque veram δικαιόσυνην ceremoniarum observatione cerni, vereque Paulum scripsisse: οὐδὲ οἱ περιτεμνόμενοι αὐτοι νό-μον φυλάσσονται Gal. VI: 13. — Caeterum cf. Thiersch, Versuch u. s. w. p. 198 et 225 sq.

despicent et τοὺς ἀσθενοῦντας τῇ πίστει vexarent; vel denique qui, fortasse numero perpauci, εὐ ἀποβυστίᾳ δύτες circumcidendos se curarent; quum a priori, q. d., veri simile sit, tum affirmant historicae de variis extra Palaestinam ecclesiis notitiae¹⁾. Alia longe facies fuit coetuum Palaestinensium. Quum hic pariter licitum esset πάτρια ἔθη servare, stabilem ibi sedem nactus est Judaeo-Christianismus, et liber ab omni Ethnico-Christianismo viguit; ab exterris coetibus magis magisque segregabantur hi coetus, invidis etiam oculis crescentem adeo Ethnico-Christianorum numerum contemplantes. Jacobus, Hieros. Ecclesiae Episcopus, in gentium quidem conversione vaticinationes expletas videns, neque gentibus ceremoniarum jugum imponendum censens, ipse tamen fidelis legis observator²⁾, profectis, ut videtur, Petro atque Johanne³⁾, solus ibi relinquebatur; illustri ceremoniarum, quem assidue in tem-

1) 1 Cor. VII: 17, 18. IX. X. Rom. XIV. Ipsa coetuum intergentes conditio ansam dabat Palaestinensium Christianorum in Paulum prolatae accusationi Act. XXI: 21. Cf. Neander, *Gesch. d. Pfl.* I. p. 380 sq.

2) Jacobum legis observationem inter Hieros. Ecclesiae socios potius commendasse quam improbasse, probabiliter efficias ex iis, quae leguntur Act. XXI: 20 seqq.; ad salutem autem necessariam illam haud amplius habere potuit, postquam Christianos e gentibus a legis jugo liberos declaraverat.

3) Quum et traditio, quae in canone hisce duumviris tribununtur scripta testentur, illos seriore vitae aetate alias extra Palaestinam regiones adiisse, e loco Act. XXI: 18 seqq. probabiliter efficias, eos tunc jam (A. 58) Hierosolymis abisse. Cf. Thiersch, I. I. p. 87.

plo Hierosolymitano adspiciebant, apparatu haud parum obcaccabantur Palaestinenses Christiani, qui in dies magis magisque ζηλωται τοῦ ρόμου evadebant (*Act. XXI: 21*), evanescente tantum non omni Iudeos inter atque Christianos discrimine; unde mox graviter verendum erat, ne Palaestinenses Christiani ad pristina Iudeorum sacra redirent, quod ut averteretur scripta fuit Epistola ad Hebraeos (Aº. 65—67)¹⁾. Haec rerum conditio originem suam petit et facile explicatur e decreto Hierosolymitano, simulque certa nobis testis est de Lucae in narrandis iis, quae Hierosolymis acta fuerunt, fide historica, quod quomodo intellectum esse velim, e sequenti disputatio*n*e luculentius etiam apparebit.

§ 11.

Quomodo et mutata deinceps, testantibus reliquis Pauli Epistolis, certaminis facies, et ipsa Pauli docendi agendique ratio valeant ad Lucae in referendo decreto Hieros. fidem historicam stabilendam exponitur.

Iteratis vicibus²⁾ merito attendit Baurus ad diuersas facies, quibus Pauli e Iudeo-Christianis aduersarii contra ipsum processerint. Ita epistolam ad Galatas cum reliquis comparans verrissime: »Auf der äussersten Spitze der Opposition,« inquit³⁾,

1) Cf. Schliemann, l. l. p. 395 sqq. et Auctores ibi laudati.

2) Ita l. l. p. 257 sq., 349, 379 sq.

3) l. l. p. 379.

»gegen den Heidenapostel standen unstreitig die Gegner, die wir aus dem Briefe an die Galater kennen lernen. Sie wollten geradezu nichts anders, als ein den Institutionen und Formen des Judenthums völlig untergeordnetes Christenthum, und drangen daher vor Allem auf die Beschneidung, als die nothwendige Bedingung, unter welcher allein die Heiden in die christliche Gemeinschaft aufgenommen werden dürfen. Daher tritt auch hier die Polemik des Apostels in ihrer ganzen Stärke und Entschiedenheit auf, in keinem andern Briefe spricht sich der Apostel so unmittelbar und unzweideutig über sein ganzes Verhältniss zum Judenthum und *zu den Judenaposteln aus;*” et hoc quidem, quoniam adversarii horum Apostolorum auctoritatem Paulo opponebant. Haud poterat ideo, quod initio vidimus, Paulus in hacce Epistola ea quae Hierosolymis acta fuerunt (*Act. XV*), silentio praeterire, suique defendendi arma in aliis omnibus, quae multo minus probarent, quaerere; quodsi vero statuas conscriptam fuisse epistolam ante concilium Hieros., ét omnis difficultas tollitur, ét Paulum in Ep. ad Gal. accurate omnia referre videmus, quibus auctoritatem suam Apostolicam doctrinamque non ab hominibus petitam esse, et qualis reliquorum Apostolorum de legis observatione sententia fuerit probaret. Ponamus, quod Bauro ¹⁾ satis verisimile videtur, decretum Hierosolymitanum numquam latum fuisse; tunc jure quaerimus undenam factum sit, ut adversarii haud amplius, reliquorum Apostolorum auctoritate nisi, plenissimam

1) I. I. p. 379.

legis observationem postulare ausi fuerint; quid causae fuerit, cur prorsus mutata sit pugnae facies? Haud enim sufficit, ut cum Baur o¹⁾) memorabile esse dicamus, in epistolis ad Corinthios haud amplius de circumcisionis necessitate agi, licet idem oppugnetur Judaizantium adversariorum genus, pugnamque ibi, exuta prima, illaque rudiore forma, moderatius prodiisse, aut in epistola quoque ad Romanos longe mitius adversariorum genus ab Apostolo oppugnari, qui neque de circumcisione gentilibus imponenda amplius cogitarent, nec Pauli Apostolicam auctoritatem in dubium vocarent²⁾; sed caussa quaerenda est, cur haud persisterint in petenda a gentibus circumcisione, quod tam prospere in Galatiae ecclesiis iis cesserat. Nisi verum est, reliquos Apo-

1) I. l. p. 258. Baurus quidem in mutata, qua Pauli adversarii Corinthi prodierint, facie, horum prudentiam seu calliditatem cerni ait, quippe qui rite perspicerent sibi in Ecclesiam, quae sedem constituebat Graeci cultus et maximam partem Ethnico-Christianis constabat, alia ratione prodeundum esse, quam in Asiae Minoris Ecclesiis. Vid. p. 260, coll. p. 278. Mira sane prudentia! Quodsi enim revera etiamnunc iisdem armis uti potuerint, quibus in Galatiae ecclesiis tam prospere ad doctrinam suam commendandam usi fuerant; quodsi etiamnunc reliquorum Apostolorum auctoritatem praetendere potuerint, nec tamen hoc fecerint, miseros potius suae caussae patronos illos dicere, quam illorum prudentiam admirari quis dubitaverit? Hoc Baurus ipse perspexisse videtur, quum fieri etiam potuisse addat, ut ipsi jam meliora edocti haud amplius de circumcisione ab Ethnicis petenda cogitaverint. Cur autem hoc concedens Baurus, ea, quae Hierosolymis Act. XV acta sunt, et Pauli atque reliquarum Apostolorum consensum probant, in dubium vocare possit, non satis perspicio.

2) I. l. p. 380.

stolos suam de legis observatione sententiam ita enuntiasse, ut variarum ecclesiarum sociis innotuerit, aenigma oritur, quod solvendum est, antequam Lucae historicam fidem denegas, ubi facta narrat, quibus omnis haec rerum conditio egregie explicatur. Quum enim tota primorum Christianorum doctrina ab iis penderet Apostolis, qui cum Christo conversati fuerant, hi autem initio Hierosolymis Judaeorum mores sequerentur legemque observarent, intelligitur facile negotium fuisse Pauli adversariis hujus doctrinae in Galatiae ecclesiis evertendae; quodsi vero illos deinceps haud amplius probatis his armis uti videmus, haec arma iis ademta fuisse jure suspicamur. Adversarios iis, quae Paulus primo et altero Epistolae ad Gal. capitibus refert, provocatione ad reliquos Apostolos destitui, plenumque Paulum inter et Ecclesiae columina consensum probari merito negant Tubingenses; contra vero post ea, quae Lucas *Actuum* c. XV Hierosolymis acta esse refert, circumcisionis ad salutem comparandam necessitas haud amplius tamquam reliquorum Apostolorum sententia commendari poterat; data epistola illa ecclesiae Hierosolymitanae, et cum variis, quas Paulus inter gentes considerat et deinceps etiam condidit, ecclesiis communicata, Pauli adversarii a commendanda circumcisionis necessitate desistere coacti fuerunt. Ita demum intelligimus, quare deinceps mutata prorsus facie atque obliquo quasi ictu in ecclesias, a Paulo conditas, irruerint; fidem igitur habemus Lucae haec narranti, donec Tubingenses meliora docuerint atque mutatae hujus rerum conditionis idoneam caussam protulerint, quae, quum ipsa

certis probetur indiciis historicis, Actuum cap. XV narrationem erroris aut mendacii convincat. Latenter igitur decreto Hierosolymitano, mox (ut videtur sequenti anno) Pauli adversarios in Thessalonicensi ecclesia, obliquam, ut ita dicam, viam suae doctrinae sternere videmus, quum, commendatâ Christi instantे parusiâ, nuper conversorum animos terrore implerent, quo ducti in Evangelio, quod Paulus iis annuntiaverat, haud acquiescerent, sed ad legis observationem confugerent¹⁾; in Corinthiaca Ecclesia, in dubium vocata Pauli apostolica auctoritate prolatisque in Pauli personam opprobriis, ecclesiae socios ab ipsius doctrina et exempli imitatione avocare studebant²⁾; quodsi postea, decem fere annis post conscriptam epistolam ad Gal. latumque decretum Hierosol., hic illic, veluti Colossae (Ep. ad Col. II. vs. 11, 16) et Philippis (Ep. ad Phil. III init.) eadem στοιχεῖα τοῦ νόσου commendabantur, quae olim in Galatiae ecclesiis, nusquam tamen reliquorum Apostolorum auctoritatem praetentam videmus; quum ipsa quoque ratio, qua Paulus in epistolis, quas memora-

1) Ita probabiliter a Judaeo-Christianis turbarum, quas commendatâ instans Christi parusia excitavit, originem repetit Schleemann, 1. 1. p. 393. Quodsi hic *initia* hac in re cerni Judæizantium factionis affirmat (einleitende Massregel.... das Gesetz aufzudringen), quae mox Galatiae ecclesias aperte magnoque impetu irrueret; nos ét in obliqua hac doctrinae suae commendandae ratione, ét in conamine per fictitiam Epistolam (2 Thess. II, 2) ecclesiae sociis persuadendi, conatus cernimus eorum, quibus aperte prodeundi et ad reliquorum Apostolorum auctoritatem provocandi, quod in Galatiae ecclesiis antea fecerant, opportunitas decreto Hieros. praeccisa fuerat.

2) Hac de re deinceps fusius videndum.

tis ecclesiis dedit, hos errores impugnet, luculento documento est, quam exigno cum successu ibi commendarentur, si cum Galatiae ecclesiis eas compares¹). Romae denique haud adeo adversarii Pauli prodiisse videntur; in epistola certe, quam Romanae Ecclesiae dedit Apostolus, nusquam, prouti in reliquis epistolis, *adversarios ob oculos habet*²), neque ibi de lege gentibus imponenda necne ambigebatur; sed et Christianae religionis universa conditio, cuius inter gentes propagatio, imprimis post Pauli inter Ephesios commorationem, quo tempore conscripta fuit Epistola ad Rom. (Act. XX: 3), in dies increscerat, quum Judaeorum animi magis magisque obdurescerent, et Romanae imprimis ecclesiae ratio, cuius maxima pars ex Ethnico-Christianis constabat, huic epistolae conscribendae ansam praebuerunt. Quum enim Ju-

1) Haec non ita intellecta esse velim, ac si Paulus minus graviter invelhatur in falsos doctores in hisce ecclesiis, quam in Galatiae ecclesiis; immo quum in epistola ad Galatas magis eos, quibus data est epistola, increpet, contra adversarios suum auctoritatem doctrinamque ita tuens, ut alteram auctoritatem alteramque doctrinam, quae dialectice refutanda esset, illi oppositam fuisse appareat; in reliquis epistolis Judaizantes adversarios aperte mendacii, fraudis atque impudentiae accusat (cf. imprimis 2 Cor. XI: 13, Philipp. III: 2). Post decretum enim Hieros. variis artibus utendum iis erat ad commendandam suam doctrinam: quod autem illi, ad quos missa est epistola, magis monentur, ne his artibus capiantur, quam ut jam capti vituperantur, hoc documento est, adversariis doctrinæ suæ commendationem parum successisse.

2) Consentientem quodammodo hac in re habemus Baurum, I. 1. p. 380: »die Gegner des Apostels sind nur die Leser des Briefs selbst, in welchen der Apostel ebenso sehr Brüder als Gegner erkennt.“

daeo-Christianorum de misera gentis suae incredulæ sorte augesceret anxietas, neque sine invidia crescentem Ethnico-Christianorum numerum adspicerent, quo praerogativæ, Judaicæ genti concessæ, offendarentur; Paulus in Epistola ad Romanos non tam in arenam descendit, ut adversarios oppugnet, quam potius solatium affert eorum animis, qui, pariter ac ipse, gentis suae incredulæ sortem lugebant, ita tamen, ut, exposita Euangeli summa, Judæos quidem primum, sed pariter etiam gentes vocatos esse, ut salutis, qua *Iουδαιος τε καὶ Ἑλλην* indigeant, participes fierent, ostendat. Hinc in magna argumenti similitudine cum epistola ad Galatas, e diversa utriusque ecclesiae conditione epistolæ ad Romanos, cui conscribendæ pariter atque reliquis epistolis ipsius ecclesiae conditio ansam dedit ¹⁾, irenico-catechetica, si ita dicere licet,

1) Capitibus IX, X et XI ea pars continetur, unde totius epistolæ interpretatio proficiscenda est, quoniam iis conscriptæ epistolæ opportunitates indicantur. Vere Baurus, l. l. p. 354: »Erhellt hieraus dass es dem Apostel Kap. 9, f. nicht auf dieselbe Weise, wie in dem vorangehenden Abschnitt (Kap. 1—8), um die Entwicklung neuer dogmatischer Ideen zu thun ist, so ist eben so klar, dass es um so mehr seine Absicht ist, die schon entwickelten Ideen nun mehr auf gegebene bestimmte Verhältnisse anzuwenden»; hae (die gegeb. best. Verh.) autem in ipsa Römana ecclesia aderant: in hac ipsa ecclesia crescens in dies Ethnico-Christianorum numerus Christianorum e Judaeis exiguum catervam invido luctu afficiebat. Concedendum est Baur o, rationem, qua Paulus C. XI: 13—24, Ethnico-Christianos alloquitur, argumento esse, Apostolo caeteroquin magis cum Judæo-, quam cum Ethnico-Christianis rem esse; neque tamen hinc officias Romanæ ecclesiae maximam partem Judæo-Christianis constitisse, nisi prius hanc miram sane (etsi plerisque interpretibus pro axiomate sumtam) probaveris thesin: illi,

epistolae ad Galatas polemico-apologetica indoles explicanda est ¹⁾.

Quum ita diversa, qua Pauli adversarii prodierunt, facies decreti Hierosolymitani omniumque eorum, quae Lucas C. XV refert, *ἀξιοπιστίαν* tueatur; ipsius Pauli quoque agendi docendique ratio, quum his demum explicetur atque intelligatur, Lucanae narrationis veritati testis est minime contemnenda. Narrationem de Timotheo, brevi post concilium Hierosolymitanum circumcisio (*Act. XVI*: 3), nulla fide dignam esse, haud sine veri specie contendit Baurus ²⁾; quis enim credat, Apostolum, qui antea firmiter iis sese opposuerit, qui Titi circumcisionem peterent (*Gal. II*: 3), iisque, qui in eo essent, ut circumcisioni sese submitterent, seriore etiam tempore scribat: *ἰδὲ, ἐγὼ Παῦλος λέγω ὑμῖν, δότι, εἰὰν περιτέμνησθε, Χριστὸς ὑμᾶς οὐδέποτε ὠφελήσει* (*Gal. V*: 2 coll. v. 11 et *III*: 10, 28), hunc, inquam, auctorem fuisse ut Timotheus, e matre Judaea, patre vero Graeco natus, circumcidetur? aut ipsum Judaeorum ceremonias religiose observasse, quin Naziraeorum etiam votum suscepisse (*Act. XVIII*: 21, *XXI*: 23—26) ³⁾? Ab altera autem parte jure ipsum Paulum actorum, quae Lucas ipsi tribuit, patronum adducunt, ubi: *ἐλευθερος ὅντε, inquit, επὶ πάντων, πᾶσιν ἡμαυτὸν ἔδωλωσα, ἵνα τοὺς πλείονας περδήσω, καὶ ἐγενόμην τοῖς*

de quibus in epistola maxime agitur, majorem coetus partem constituant necesse est.

1) Cf. da Costa, I. l. I. p. 344 sqq.

2) I. l. p. 129 sqq.

3) Baur, I. l. p. 194 sqq.

'Ιονδαῖοις ὡς 'Ιονδαῖος, ἵνα 'Ιονδαῖονς κερδήσω τοῖς ὑπὸ νόμου ὡς ὑπὸ νόμου, ἵνα τοὺς ὑπὸ νόμου κερδῆσω, μὴ ὡν αὐτὸς ὑπὸ νόμου¹⁾ (1 Cor. IX: 19, 20), et, antequam iis, quae Lucas refert, fidem denegas, quomodo haec verba cum Pauli in epistola ad Galatas doctrina convenient, explicandum esse monent²⁾. Haec autem explicatio utrum interpretibus satis cesserit vehementer dubito; nam vel dictorum in ep. ad Gal. plenam vim, quum, in auxilium vocata analogia fidei, moderandam esse censerent, enervarunt; vel ea, quae necessarie e dicto in ep. ad Cor. concluduntur, callide evitarunt; vel ad locum in ep. ad Gal. monentes, Paulum alibi lenius de eadem re existimasse, difficultatem indicarunt quidem, minime vero solverunt. Tollitur autem difficultas, dummodo rite ad Ecclesiae Christ. conditionem attendimus, quo tempore conscripta fuit epistola ad Galatas, mutatam illam deinceps, postquam seniorum Apostolorum de legis observatione sententia variis innotuerat ecclesiis. Tempore illo, quo Titi circumcisio petita et epist. ad Gal. conscripta est, praevalebat in Ecclesia, quem seriore tempore dixerunt, Ebionitismus, ὅτι ἐὰν μὴ περιτέμνησθε τῷ ἔθει Μωϋσέως, οὐ δυνασθε σωθῆναι docens, et ita circumcisionem ab omnibus tam Judaeis quam gentibus, qui ad sacra Christiana transirent, postulans; tali doctrinae, quae

1) Haec verba, quae propter homoiotelenton excidisse videntur, cum plerisque interpretibus retinenda sunt. Cf. de Wette, in *comm. ad h. l.*

2) Veluti Thiersch, I. I. p. 225. Da Costa, I. I. I, p. 156 sq. alii.

Judaismo de Evangelio victoriam pararet, eo majore animi fervore resistit Apostolus, quo magis instantem illius victoriam prospicit, quum illius patroni haud sine veri specie ad reliquorum Apostolorum auctoritatem provocarent, a qua tota pendebat prima ecclesia. In epistola igitur ad Galatas, vere monente Calvin o¹⁾) »circumcisionem Christo, fidei, Evangelio et gratiae opponit, ut sit merum pactum legale, in operum meritis fundatum,” quum pseudoapostoli opus meritorium esse fingerent, et ita legis observationem commendarent. Nisi hicce Ebionitismus ex ecclesia cesserat, Paulus, quam semel inierat viam, nunquam relinquere potuisset. In tali rerum conditione Timothei circumcision aut voti susceptio, brevi, agendi illa norma, quam Paulus (*1 Cor. IX: 20*) suam fuisse dicit, Evangelii caussae misere nocuisset²⁾; at vero, postquam Pauli constantia suae caussae victoriam attulerat, et Spiritus sanctus caeteris Apostolis de veritate Paulinae doctrinae persuaserat, Ebionitismum ex

1) *Comment. ad Gal. V: 3.*

2) Non igitur Pauli neophyti ardori severius de circumcisione judicium tribuimus, neque nostram sententiam spectant ea, quae contra Böttgerum disputat Rückertus, *Magaz. f. Exeg. u. Theol. d. N. T.* I, p. 125. Verissime hic: »Daher (quoniam legis circumcisionisque ad salutem necessitas Paulinam doctrinam prorsus evertetebat)” konnte er nicht nur nichts nachgeben, ohne sofort das Ganze seiner Lehre und seines Werkes aufs Spiel zu setzen, sondern es musste auch — bei seiner Natur zumal — der Kampf auf sein eigenes die Wirkung haben, die er ziemlich auf jeden Menschen hat, ihn je längerer währte, desto mehr in seiner Ueberzeugung zu bestärken, je mehr er darum litt, desto unzüglicher jeder mildere Ansicht zu machen.”

Ecclesia expulit decreto Hierosolymitano vulgatum Apostolorum judicium. Quum ita Apostolica auctoritate litibus de circumcisionis ad salutem necessitate finis impositus esset, Paulus demum sine Evangelii detrimento, imo magno hujus emolumento, illam normam sequi potuit, quam ipse aliquot annis post suam fuisse declarat; et Timothei circumcisionis, suadente Paulo, in eadem illa regione suscepta, quo Apostolus ante concilium Hierosol. hanc ipsam epistolam miserat, primum in Ecclesia, a legis servitute liberata, monumentum est libertatis vere Christianae, quo facilius inter Judaeos Evangelium propagaretur, exstructum 1). Constantia autem, qua Titi circumcisioni obstitit Apostolus, in Ecclesia, quae nondum legis jugum exuerat, fervor ille in vituperanda timida Petri simulatione, illud ἀνάθεμα ἐστι in omnes, qui aliud evangelium annun-

1) Vera hic adscribere juvat Viri Doct. da Costa verba: »Dat Paulus Titus niet besneed op den eisch der Christenen uit de Joden, dat hij Timotheus ongevraagd aan de besnijdenis onderwierp ter wille van de nog niet tot Christus bekeerde synagoge, was juist het toppunt van consequentie in de opvatting der vrijheid van het geloof.“ l. l. p. 156. Rechte, si Timothei circumcisionis tempore suscepta fuit, qua in ipsa ecclesia circumcisionem ad salutem necessariam esse haud amplius contendebant, quodsi vero cum D. C. epistola ad Galatas, et ita tota quoque, quae ex illa cognoscitur, ecclesiae conditio ad seriora tempora refertur, Paulus certe valde imprudentur egisse dicendus est; etiamsi enim neque ipse nec Timothenus, siquidem hic pariter atque Paulus Christiana libertate gaudebat, hac circumcisione legis jugum sibi imponerent; in ecclesia, quae Pharisaeorum Judaismo adhuc turbabatur, hoc factum sine magno internae pacis damno haud peragi poterat. Quae hic disputavimus satis etiam Ebrardi disputationem refutant in diario: *Zukunft d. Kirche* 1847, p. 320 sq.

tiarent, (*Gal. I: 8, 9*), tota denique epistola ad Galatas illustre constituant tropaeum in pugna, qua Pharisaeorum Judaismum, in Ecclesia Christiana de imperio decertantem, profligavit Paulus. Medium autem inter hoc utrumque decretum Hierosolymitanum comparatae libertatis constitutaeque internae pacis pignus constituit; quod antequam concidere licet, aliud prius in illius locum substituendum est, quod tam devictae Judaismi formae, qua in Galatiae ecclesias processerat, quam diversae, qua Paulus usus est, agendi normae rationes reddat. Audio quidem, qui graviter me vituperandum esse censeant, quod Actuum ἀξιοπιστίαν tuendi studio abductus, Paulum inconstantiae accusem, atque pro firmitate et constantia Apostoli in oppugnandis erroribus, quibus angusti suorum aequalium animi constringerentur, indulgentiam quandam, vel potius ad errores istos sese accommodandi studium, haud minus vituperandum quam Petri istam ὑπόχρισιν, ipsi tribuam¹⁾; his autem convenienter iis, quae hucusque disputavimus, hoc unum respondemus, mutata rerum conditione, qua versamur, mutandam quoque esse agendi normam²⁾; illumque, qui, postquam facto doctrinaque

1) Usitata haec est Tübingensium querimonia in illos, qui Lucae fidem historicam tueruntur; vid. v. c. Baur, I. l. p. 198. sq.

2) Hoc universe monendum est contra morem illum in Tübingensium critica usitatum, quo ad facta quaedam atque dicta, in epistola ad Galatas obvia, semper provocent, ac si his solis tota Apostoli vita atque doctrina describeretur, parum attendentes, utrum rerum conditio eo tempore, quo Apostolus haec peregit atque docuit, diversa sit ab illa, qua facta dictaque Apostolo tri-

errores oppugnaverit atque constantia sua devicerit, deinceps etiam agat doceatque, ac si errores illi etiam nunc dominarentur, non constantem dicendum esse, sed parum sapientem; quippe qui libertatem suam, quam aliquando sapienter inhibuerat, ne eorum, qui nondum eadem libertatis notione gauderent, errores augescerent, horum jam devictorum errorum vinculis constringi patiatur. Haud aliter Apostolus in epistola ad Romanos, data illa Ecclesiae, ubi legem circumcisionemque necessariam esse haud amplius contendebant, de circumcisione aliter loquitur quam in Epistola ad Galatas; in illa enim circumcisionem, in sua natura consideratam, merito symbolum facit gratiae, sigillum illam dicens justitiae per fidem, Christum gratuitamque salutis promissionem sub circumcisione includens, quoniam ibi explicat quale Dei institutum, veluti sacramentum, quod Abrahams fidei serviret, fuerit; in epistola vero ad Galatas, non respiciens ad Dei consilium in instituenda circumcisione, sed unice pseudo-apostolorum errorem impugnans, qui opus meritorum illam esse fingebant, et ita illius ope legis observationem commendabant, circumcisionem tamquam initiationem ejusmodi professionis considerat, et hanc ab hominibus profectam corruptelam impugnat¹⁾). Haud aliter igitur tempore, quo circumcisio in Ecclesia haud amplius profitendae

buuntur, quae, quod fatendum est, non mutata] rerum conditione, Apostolum, nisi simulationis, certe inconstantiae arguerent.

1) Cf. Calvinus, *Comm. ad ep. ad Gal. V: 3*, cuius verba fere integra dedimus.

legis initatio habebatur, eidem sua sponte in quodcunque Ecclesiae commodum quemvis circumcisioni tradere licuit, qui antea, quum in ecclesia una cum circumcisione legis observatio tamquam ad salutem necessaria postularetur, firmiter constanterque, quomodo susciperetur, vetuerat. Hoc facto effatum suum explicabat atque confirmabat: πάντα μοι ἔξεστιν, ἀλλ' οὐ πάντα συμφέρει· πάντα μοι ἔξεστιν, ἀλλ' οὐκ ἐγώ ξένουσιασθήσομαι ὑπό τινος, (1 Cor. VI: 12), et ostendebat non offendti libertatem, quae omne servitutis jugum exuerit, si mox sua sponte eadem onera libere subeat, imo illum demum vere liberum esse dicendum, qui, quum permultis miserum servitium ita placere videat, ut bona a libertate allata suo pretio aestimare nec velint nec possint, denuo servitium sponte suscipiat, ut servus cum servis de servitutis miseria agat; bonorum, quibus liber gaudet, communicatione horum desiderium inter illos excitet, et viam, quae ad illa ducit, iis monstret; qui, ut brevi dicam, Paulinam hanc normam sequatur: ἡλεύθερος ὡν ἐκ πάντων, πᾶσιν ἔμαυτον ἐδούλωσα, ἵνα τοὺς πλείονας κερδήσω¹⁾.

1) Quo sensu Baurus hoc effatum intellexerit, et quo facto e Pauli vita illud illustret; haud liquet in eo, quod l. l. pag. 131: »Was der Apostel«, inquit, »1 Cor. IX: 12 (lege: 20) sagt, er sey den Juden ein Jude geworden, um Juden zu gewinnen, kann doch gewiss nicht in einem Sinne genommen werden, in welchem er wesentliche Grundsätze verläugnet haben müsste,“ ubi quemvis facile sibi consentientem habebit; quae deinceps leguntur: »Er kann ja den Juden nur in demselben Verhältniss ein Jude geworden seyn, in welchem er auch den Heiden ein Heide wurde,“ verba sunt, quorum illustrationem frustra quæsivimus: qui autem ea legerit, quae pag. 654 seq. disputat auctor, veluti: »Wie aber die wahre Frei-

Quam ita extra Ecclesiam erga Judaeos atque Gentes, candem quoque in Ecclesia erga Judeo- et Ethnico-Christianos et ipse secutus est et aliis commendavit agendi normam¹⁾, quam iisdem fere verbis, nisi quod magis fraterni amoris affectum testentur, enuntiat: πάντα (μοι) ἔξεστιν, ἀλλ' οὐ πάντα συμφέρει πάντα (μοι) ἔξεστιν, ἀλλ' οὐ πάντα οἰκοδομεῖ (1 Cor. X: 23); ita enim, quum in Corinthia ecclesia multi altiore cognitione (*γνώσει*) superbientes, a carnis gentium victimis residuis (*εἰδωλόθυτα*) ab-

heit nicht ohne Selbstbeschränkung ist, nur durch die Schranke, die sie sich selbst setzt und wieder aufhebt, ihren Begriff realisieren kann, wie eben deswegen die grösste Freiheit von allen *beengenden und hemmenden Formen* auch wieder die grösste Fähigkeit ist, mit seiner Subjectivität in die verschiedensten Formen einzugehen, so betätigte sich bei dem Apostel ebendadurch sein christliches Freiheitsbewusstseyn als das wahre, aus der ächten und lauteren Quelle der Freiheit entsprungene.... Diese innere geistige Freiheit, ohne welche es kein christliches Bewusstseyn gibt, hat der Christ in jeder Lago seines Lebens. Er ist innerlich frei, auch wenn er äusserlich unfrei ist; qui hacc, inquam, legerit, mirabitur auctorem loco, quem primum laudavimus, haud distinxisse libertatis internam conscientiam et externam, qua prodeat, formam, neque inter verae doctrinae negationem et accommodationem ad formam quandam externam, eamque eo consilio concessam, ut illos, qui neglecta seu ignorata ipsa re, his formis adhaerescant, ad ipsam rem revoces, hanc iis patescias atque illustros et, quodsi imperfectam eam esse iis constiterit, ad meliora illos ducas.

1) Neque tamen ideo n. l. verba: ἐγενόμη τοῖς ἀσθενεῖσιν ὡς ἀσθενῆς de Christianis, quorum debilem conscientiam venerabatur Apostolus, intelligenda esse censeo, quoniam additum: ἵνα τοῖς ἀσθενεῖς αερόδρομον, de iis, qui nondum Evangelium acceperint, Judaeis et Ethnicis, cogitare Apostolum suadet. Cf. J. E. Osiander, *Commentar ueb. d. erst. Br. a. d. Kor. ad 1. 1.*

stinentiam angustis animis relinquendam esse, γνῶσιν autem, quominus ipsi tale quid observarent, vetare contenderent; amoris prae gnosti praestantiam effert Apostolus: η γὰρ γνῶσις φυσιοῖ, η δὲ ἀγάπη οἰκοδομεῖ (1 Cor. VIII: 1 coll. XIII: 2), et, qui saepius illud: μιμηταὶ μον γίνεσθε omnibus commendaret, hac quoque in re, ut superbientes Corinthii hanc amoris legem vitae quasi signo obsignarent, de se ipso testatur: διόπερ εἰ βρῶμα σκανδαλίζει τὸν ἀδελφὸν μον, οὐ μὴ φάγω πρέσα εἰς τὸν αἰώνα, ἵνα μὴ τὸν ἀδελφὸν μον σκανδαλίσω (1 Cor. VIII: 13). — Sed non Pauli vitam aut indolem adumbrare nobis proposuimus; redeamus igitur eo, unde digressi sumus. — At vero hac ipsa digressione novis difficultatibus constricti tenemur, de quibus deinceps videamus.

§ 12.

*Dubitatio, ex epistolis ad Corinthios contra Lucae,
decretum Hieros. referentis, fidem historicam.*

Quodsi revera latum fuit decretum Hieros., quo non tantum de circumcisione actum fuit, neque ab omni onere liberati fuerunt Christiani, diserte vero constitutum fuit: μηδὲν πλέον ἐπιτίθεσθαι βάρος, πλὴν τῶν ἐπάναγκες τούτων ἀπέχεσθαι εἰδωλοθυτῶν, καὶ αἴματος, καὶ πνικτοῦ, καὶ πορνείας, Paulus in epistolis certe ad Corinthios hujus decreti mentionem facere debuerat, ubi et turpem incestum (*πορνείαν*) punit, et quaestionem περὶ τῶν

εἰδωλοθυτῶν solvit (*Cor.* V et VIII); quid? quod lato decreto Hieros. Corinthii ne ipsam quidem περὶ τῶν εἰδωλοθυτῶν quaestionem Apostolo proponere potuerant. Ita Baurus¹⁾. Pariter Neanderus²⁾ memorabile esse dicit, nullam hujus decreti injici mentionem; illam autem Pauli propriam esse notam monet, quod haud ad scriptam legem provocet, sed ad internam illam legem, fidelium animis inscriptam, ad amoris illum sensum, ab Evangelio postulatum; praeter-eaque, quoniam hujus decreti erat pactum constituere inter utramque et Iudeo- et Ethnico-Christianorum partem, simulatque alterutra in pacto non maneret, hujus observandi officium haud amplius ab altero peti posse, atque igitur, postquam Iudeo-Christianii ab Ethnicis circumcisionem petere haud destiterant (quod ex epistola ad Galatas efficitur), Ethnico-Christianios quoque pacti vinculis solutos esse; quam Neanderi³⁾ argumentationem Baurus⁴⁾ facile atque jure eo

1) I. I. p. 134 sq. et 143.

2) *Gesch. d. Pfl. u. s. w.* I, p. 335.

3) Unice ab Apostolis Palaestinensibus observatum esse decretum Hieros. ait Neanderus, testante *Luca Act. XXI: 25*; hoc autem argumentum contra Baurum nihil valere, ut latum esse decretum probes, intelligitur, negamus praeterea a Judaco-Christianis haud observata fuisse, quae decreto illo sibi imponerentur; argumenta enim ex epistola ad Gal., ante latum decretum data, dueta nihil valent; quum autem in Epistolis ad Corinthios de circumcisione nullus sermo sit, in ipsum indubitate arguento cst, Iudeo-Christianios ibi pactum observasse, neque igitur ibi Ethnico-Christianis licitum erat pacti vincula solvere. Quis denique credit, Paulum talem normam probasse: una parte pactum haud observante, altera haud amplius illo tenetur?

4) I. I. p. 136.

convertit, ut probet numquam decretum Hierosolymitanum latum fuisse. Quum autem nos ex ipsarum Pauli epistolarum, et diserte quidem earum, quas Corinthum misit, diverso ab Epistola ad Galatas argumento, turbas ab iis, qui circumcisionem peterent, excitatas, sedatas esse viderimus, atque et hanc et alias propter caussas latum fuisse decretum contendamus; jure a nobis quaeritur, quomodo explicandum sit, Apostolum, quum Judaeo-Christianii pactum observarent, hujus observationem ab Ethnico-Christianis haud diserte postulasse? ad quam quaestionem solvendam cognoscenda nobis est Corinthiae ecclesiae conditio, imprimis partium in illa indoles, qua de re deinceps videndum.

§ 13.

Ut solvatur mota dubitatio, in Ecclesiae Corinthiae conditionem, maxime in partium ibi vigentium indolem inquiritur.

Ipsa utriusque Epistolae ratio luculenter docet, Apostolum haud explicita ratione singulas singulatim partes refutare, ideoque, licet ipsis Corinthiae ecclesiae sociis, lectis epistolis, continuo quid singularum partium socios spectaret, quid minus, liqueret, sententiatarum, quas protulerunt interpretes, cohortem tuam quidem augere licet, adductis quae probabilem illam reddant argumentis, sed probabilitatis nomine contentus a certi quid statuendo desistas, nisi divinare prius magnus tibi donet Apollo. Illud autem prae

caeteris caveas, ne analogiae jure abutens sententiam sumas, aliunde, non ex his ipsis epistolis haustum, qua sumta varios, qui ad hanc sententiam adoptari possint, locos eligas, et ex horum interpretatione diversarum partium effigiem fingas; haud dissimilis artifici, qui, ut effigies ingenio suo, aut nescio unde, petita cum ipsa re conveniat, hanc ad illius exemplar mutare velit. Hanc tamen praepostere agendi rationem, maxime post Storrium, permulti secuti sunt interpretes, quicunque quas ex epistola ad Galatas cognitas habebant Paulinorum et Antipaulinorum, qui Paulinae doctrinae reliquorum Apostolorum opponebant auctoritatem, oppositas partes ad epistolas ad Corinthios traduxerunt et ita dichotomiae, ut ita dicam, patroni Paulinos atque Apollonios Petrinis atque Christinis, Ethnico-Christianos Judaeo-Christianis opposuerunt, omnia angusti animi aut latissimo sensu Judaizandi indicia his, libere contra cogitandi atque agendi illis tribuentes. Quae ratio ideo quoque improbanda est, quoniam ubi errores in vitae consuetudine (practici) primi sunt, atque eorum, qui in doctrina cernuntur (theoretici errores), fontem constituunt, aut praesidium in iis quaerunt, (rationaciones enim excogitari aut auctoritatem quandam quaerere solent homines, quibus actiones suas tueantur), haud raro cupide arripitur doctrina quaevis aut auctoritas, etiamsi hujus patroni contrariam sequantur agendi normam. Corinthi autem, in sede illa Graecae libertatis, in licentiam libidinemque depravatae, dissidiorum in Ecclesia primam caussam potissimum in sociorum moribus quacerendam esse,

quum hand sine veri specie suspiceris¹⁾, ita indieia, ex ipsis epistolis hausta, probabile reddunt.

Mox ubi Apostolus Corinthum reliquerat²⁾, jam communionem cum incestis ($\mu\bar{\eta} \sigma\gamma\alpha\tau\alpha\mu\bar{\eta}\gamma\gamma\pi\theta\alpha\iota \pi\bar{\eta}\varrho\bar{\eta}\bar{\omega}\bar{\zeta}$)³⁾ vetare debuerat, atque ubi mali quid veluti præsagiens, quoniam per longum tempus nihil certi de ecclesiae conditione audierat⁴⁾, ipse per Macedoniam Corinthum petere sibi proponit, a quo consilio quum retineretur propter prosperam Ephesi Evangelii prædicationem, paterno amore plenus Pauli animus Timotheum, suum $\tau\acute{e}\nu\nu\sigma\tau$ $\bar{\alpha}\gamma\alpha\pi\eta\tau\bar{o}\bar{\nu}$ $\kappa\alpha\bar{l}$ $\pi\sigma\tau\bar{o}\bar{\nu}$ $\bar{\epsilon}\nu$ $K\bar{\nu}\bar{\delta}\bar{\omega}\bar{\iota}\bar{\omega}$ (1 Cor. IV: 17), Epheso miserat, qui peragrata

1) Cf. Neander, *Gesch. d. Pfl. u. Leit.*, I, p. 300 sq. Pulcre da Costa, *Paulus I*, p. 287. »Waar had immer die vijand (die zijn onkruid mengt onder het zaad van den Zoon des menschen) betere gelegenheid en talrijker poorten om in te gaan tot dit zijn werk der duisternis, dan te Corinthe, die stad, werwaarts zoo veel rijkdom en weelde, ook van wetenschap en menschelijke wijsheid, als op de golven van hare twee zeeboezems, als uit Azië en Europa gelijkelijk, heen stroomde?“

2) Sive postquam per annum cum dimidiato Corinthi versatus fuerat (*Act. XVIII: 11*), seu, quod probabilius videtur (*2 Cor. XII: 13, 14 II: 1 coll. cap. XIII: 21, XIII: 1 et 1 Cor. XVI: 7*), iterum per breve tempus, fortasse antequam Ephesum adibat (*Act. XIX: 1*), Ecclesiam visitaverat. Cf. Neander, I. I. I, p. 327 sq. Osiander, *Comm.* p. 7 sq. et qui ab his laudatur scriptores.

3) 1 Cor. V: 9. Hoc unum est, quod de perditæ hujus epistolæ arguento novimus; ne quis dicat hoc ipsum monitum arguento esse decretum Hieros. Corinthi ignotum fuisse, is teneat $\tau\bar{o}\bar{\alpha}\pi\bar{\epsilon}\bar{\chi}\bar{\epsilon}\bar{\sigma}\bar{\theta}\alpha\iota \pi\bar{\eta}\bar{\omega}\bar{\varepsilon}\bar{\iota}\bar{\alpha}\bar{\varepsilon}$ non omnem cum $\pi\bar{\eta}\bar{\omega}\bar{\varepsilon}\bar{\iota}\bar{\alpha}\bar{\varepsilon}$ communionem, imprimis ubi extra ecclesiam ($\tau\bar{o}\bar{\nu}\bar{\chi}\bar{\delta}\bar{\omega}\bar{\mu}\bar{\nu}\bar{\sigma}\bar{\nu}\bar{\tau}\bar{o}\bar{\nu}$ vs. 10 erant, vetare.

4) 1 Cor. XVI: 17^b, 18.

Macedonia Corinthum adiret, 1) ut, fratribus, deliciarum atque voluptatis, cum idolorum cultu arce junctae, illecebris undique cinctis, quomodo Paulus et viveret et vivendum esse ubique doceret, in memoriam revocaret. Ecce, vix profecto Timotheo suo, ab Ecclesiae antistitibus, omnium tamen sociorum nomine²⁾, epistolam accipit Apostolus; qua tristibus dissidiis, quae e vita originem ducentia, in doctrina atque ratiocationibus sese tuendi arma quaererent, ecclesiam turbari comperit, quibus medendi gratia de variis quaestionibus Apostolum consulunt. Timotheus, juvenis adhuc (*1 Tim.* IV: 12), nondum ea instruc-

1) *1 Cor.* IV: 17, XVI: 5—11, coll. *Act.* XIX: 21, 22, quorum locorum collatio docet, haud, ut Osiander (I. I. p. 39) ait, Timotheum emissum fuisse, ut bene exciperetur Apostoli Epistola; sed contra datam esse epistolam, ut ante Timothei adventum turbata sedaretur ecclesia.

2) Ab una alterave parte conscriptam fuisse epistolam haud probabile videtur, sed ab omni ecclesia; hoc autem vix aliter cogitatione finges, nisi epistolam ab Ecclesiae antistitibus exaratam, et, antequam dimitteretur, in coetu recitatam esse statuas; Corinthiam enim Ecclesiam non e variis conventiculis (*ἐκκλησίας κατ' οἶκον*) constitisse, sed unam rite ordinatam constituisse societatem, (numero tamen haud adeo magnam), quum probabile reddat tota illa *περὶ τῶν πνευματικῶν* disputatio *1 Cor.* XII, imprimis vs. 21—31 et Cap. XIV; ita certo affirmant loca quaedam: *1 Cor.* XIV: 23, XI: 20, 22, *Rom.* XVI: 23; tales *ἐκκλησίας κατ' οἶκον* (*1 Cor.* XVI: 19) cum antiquioribus interpretibus (Theodor., Theophil., Calvinus et Grotius) et Rückerto de eorum, quos satis magna comitabatur ministrorum seu servorum eaterva, domestico cultu optime intelligas. Cf. Neander, I. I. I, p. 197 sq. et A. Niermeijer: *iets over de opschriften der algemeene zendbrieven van Paulus met betrekking tot derzelver echtheid*, in diario: *Jaarboeken voor wetensch. Theologie*, T. V, 1 pag. 97 et 102.

tus erat prudentia, ut solus, Pauli consilio destitutus, dissidiis istis mederi posset. Statim igitur, data epistola, ad varias quaestiones respondere sibi proponit Paulus, ut ita ante Timothei adventum Apostoli consilio gauderet turbata ecclesia, quum ὑπὸ τῶν Χλόης, Corintho Ephesum advenarum, varias partes, quarum singulae diversi patroni auctoritate gloriarentur, existisse comperit.

Bipartita hinc explicanda est epistolae ratio, ad quam post Mosheim in merito attenderunt interpres; priore enim parte (C. I—VI) ea pertractantur, quae *oi Χλόης* annuntiaverant, posteriore vero ad propositas quaestiones respondet Apostolus. Jam vero singulas has quaestiones, de quibus dissensio erat, ad explicandam partium indeolem referre studuerunt nonnulli interpres; alii contra hanc interpretandi rationem graviter vituperarunt¹⁾). Quum autem nemo facile ad alicujus auctoritatem provocaverit, alterius rejecta, nisi hoc illudve seu in vita sive in doctrina illius ope probare ac tueri studeat, illis potius quam his assentirer; licet ab altera parte merito mireris, ipsum Apostolum, ad quaestiones illas respondentem, haud disertius inter diversas partes distinxisse; posterior enim epistolae pars, seorsim spectata, levia tantum atque obliqua harum partium indicia continens, ita comparata est, ut Apostolum aut accurata illarum notitia indiguisse, aut disertam

1) Velti de Wette, *Comment.*, p. 6.: »Es ist eine seit Storr herrschende exegetische Unart das cor. Parteiwesen mit jedem einzelnen Gegenstände, den die Cor. Br. berühren, in Verbindung zu bringen.“

earum mentionem de industria vitare voluisse, ne discordiarum ignes suscitaret, dixeris. Quum autem prior epistolae pars contrarium probet, merito parce dissidiis illis de variis rebus, a Cap. VII inde memoratis, utendum esse monent ad explicandam partium, Cap. I. vs. 10—12 memoratarum, indolem, quoniam ipse Apostolus utrumque universe haud arcto inter se conjunxerit vinculo.

Unus tamen in posteriore epistolae parte locus datur (Cap. XI: 17—19), quo diserte σχισμάτων mentio fit, quem locum totum hic adscribere juvat: τούτο δὲ παραγγέλλω οὐκ ἐπαινῶν, ὅτε οὐκ εἰς τὸ ιρεῖτον, ἀλλ' εἰς τὸ ἥττον συνέργεσθε πρῶτον μὲν γὰρ συνεργομένων ὑμῶν ἐν τῇ ἐκκλησίᾳ, ἀκούσω σχίσματα ἐν ὑμῖν ὑπάρχειν καὶ μέρος τῆς πιστεύσως δεῖ γὰρ καὶ αἰρέσεις ἐν ὑμῖν εἶναι, ἵνα οἱ δόκιμοι φανεροὶ γένωνται ἐν ὑμῖν συνεργομένων οὐν ὑμῶν ἐπὶ τὸ αὐτὸν. τ. λ. Interpretes in hujus loci interpretatione haesitant, ubi vagam et incertam hanc dubitantis etiamnunc, utrum fides habenda sit iis, quae audiverat, necne, discordiarum mentionem cum disertis certisque verbis in epistolae initio (I: 10 sqq.), quibus σχισμάτων in ecclesia accuratam cognitionem habuisse, neque utrum affuerint dubitasse Apostolum appareret, conferunt. Vere Wettius¹⁾ contra illos, qui, praeante Theodoreto, eadem σχίσματα utroque loco indicari censeant, animadvertis: »von der Existenz jener hätte P. nicht sagen können: καὶ — — πιστεύω, und durch Hinzufügung von vs. 19 hätte er seinen obigen stren-

1) *Commentarii* p. 94 sq.

gen Tadel gar zu sehr geschwächt;” neque, vere monente Osiandro ¹⁾), altiore hoc teleologico, vs. 19 proposito, indigebat argumento, ut probaret, quare partim iis, quae audierat, fidem haberet, post ea, quae cap. I tam certo enuntiaverat. Hinc multi sunt, qui, praeēunte Chrysostomo ²⁾, σχίσματα referant adea, quae deinceps leguntur de violata Corinthi sacrae coenae sanctitate, quoniam esurientes illam adibant ecclesiae socii, et singuli, prouti primum advenerant, caeteros non exspectantes, ad famem sitimque explendam edaces appositum panem vinumque consumebant, serius advenientibus nihil relinquentes ³⁾; quum autem verecundiae illum defectum, quo conventus turbabantur, vix σχίσματων nomine, semper dissensionis notionem habente, designare potuerit Paulus; tum hac ipsa de re a vs. 20 ad 34 tam diserte certoque loquitur, tamque graviter Corinthiorum inverecundam edacitatem vituperat, ut, quae mox, praeēuntibus Wettio atque Osiandro, contra priorem sententiam attulimus, argumenta hanc pariter redarguant ⁴⁾.

1) Comment. p. 502.

2) Cf. Osiander, I. I. p. 501, qui plures laudat hujus sententiae patronos, in quam ipse etiam pronus est.

3) Simplicem atque unice veram hujus loci interpretationem dedit Doct. Doedens, *de leer van den Doop en het Avondmaal op nieuw onderzocht*, 1847, I. pag. 48, sqq. 61 sq. coll. p. 224 sq.; probavit hic neque de agapis, quibuscum Apostolorum aevo sacra coena nihil commune habuit, neque de dissidiis inter divites atque pauperes I. I. cogitasse Apostolum.

4) Quum versetur Apostolus in respondendo ad quaestiones, a Corinthiis in epistola sibi propositas, illud ἀνοίγω hanc σχίσματων mentionem a reliquis omnibus secernit.

Recurrimus igitur ad unice veram σχισμάτος significationem, qua Cap. I: 10 occurrit de dissensione, qua in doctrinae professione dissentientes, singuli ad suum patronum provocant, omnemque e sequentibus (vs. 20 sqq.) explicationem rejicimus; neque tamen ideo cum Wettio aliisque, versibus 18 et 19 primum reprehensionis Paulinae (vs. 17 οὐκ ἐπαινῶν κ. τ. λ.) caput contineri censemus, cui deinceps alterum vs. 20 ope partic. οὐν annectatur; οὐν enim pro ἔπειτα δέ respondere τῷ: πρώτον μὲν vetat particulae usus. Primum igitur reprehensionis caput constituit violata Corinthiorum edacitate sacrae coenaē sanctitas; quae autem περὶ σχισμάτων Paulino more ὡς ἐν παρόδῳ dicuntur, parenthesin constituunt¹⁾), quum primariam sententiam per particulam οὐν recipiat Apostolus. Ita autem fatendum etiam est, Apostolum n. l. longe aliter quam epistolae initio de dissidiis istis agere; hic enim ita eorum mentionem facit, ut, licet Corinthii dubitare haud possent, quin Apostolus de dissidiis in ipsorum ecclesia comperti quid haberet, ipse tamen, et quoniam in epistola nihil de dissidiis scripserant, et ne discordiarum ignis suscitaretur, diserte ea nominare directeque impugnare noluerit; neque alia totius hujus posterioris partis ratio est, quae caussa fuit, eur interpretes,

1) Totus locus a πρώτον μὲν ad γένωντα ἐν ἕμεν ad parenthesin referri potest ita, ut Paulus subita de schismatibus cogitatione, per praesentem testem injecta (hinc praesens illud historicum ἀκοίω), sponte veluti abducat; vel unice verba: ἀκοίω ad γένωντα ἐν ἕμεν parenthesin constituunt, cui ansam dederit ipsa primaria sententia; ad νομονικῶν enim in s. coenae celebratione adhortaturus Apostolus post verba illa: συνεργομένων ἐν τῇ ἐκκλησίᾳ interno motu veluti urgetur, ut verbo quae de schismatibus audierat, inserat.

partium indolem ex hac epist. parte explicare studentes, tantopere inter se dissenserint. Hinc posteriorem epistolae partem (C. VII: 1 — XVI: 21), qua ad varias sibi propositas quaestiones respondet Apostolus, ante priorem partem conscriptam esse; epistolam igitur priorem ad Corinthios e duabus compositam esse epistolis suspicor, quas tamen ipse Apostolus ea ratione, qua nunc in unam epistolam conjunctae leguntur, Epheso Corinthum miserit.

Hanc sententiam antequam quis novi quid excoigitandi studio aut temere conjiciendi ludo tribuat, is et modo observata prius refutet, et explicet nobis, quare Paulus, quodsi nexus erat inter partes illas (I: 10) et dissidia de variis quaestionibus, utramque rem tam separatim tractaverit; omnem autem nexus inter utramque negare ad obliquas Pauli in posteriore epistolae parte attendens vix potes; porro acerba illa per totam priorem epistolae partem Apostoli ironia atque indignatio, quum in posteriore ep. parte plerumque clementer, subinde severe moneat; repens ille atque abruptus ab una ad alteram epistolae partem transitus: *περὶ δὲ ὡν ἐγράψατε μοι* (VII: 1); duplex illa, tam in priore epistolae parte quam in posteriore, et sui, quod in animo habebat, Corinthum itineris, et a Timotheo susceptae legationis commemoratio, eaque quidem utroque loco diversa¹⁾;

1) Capite enim XVI: 5—11 simpliciter suum consilium, seque fortasse per totum hiemem Corinthi mansurum esse *ἐὰν δὲ Κίρκος ἐπιρρέει*, nolle enim se obiter tantum Corinthi visere, cum Corinthiis communicat, et ut amice excipiatur Timotheus commendat; epistolae autem initio (IV: 17—20) adversarios ob oculos habet,

ratio denique qua Apollonii mentionem faciat (XVI: 12) Apostolus, hujus Corinthum adeundi disertae recusationis caussam non addens ¹⁾; haec, inquam, omnia, quodsi vera sit nostra sententia, vix explicatione indigent, et ita nobis pro argumentis valent, quae sententiam nostram probabilem reddant; an vero cum vulgari sententia, absque quaesita atque contorta interpretatione, concinant, hujus videant patroni.

Attulerant igitur, ita enim rem accidisse opinor, Stephanas, Fortunatus et Achaicus Corinthiorum epistolam, variarum quaestionum solutionem ab Apostolo petentem, de diversis autem in ecclesia partibus nihil memorantem, hand quoniam nondum aderant, sed quoniam sive metu cum pudore conjuncto retinebantur Corinthii, seu spe ducebantur fore, ut Pauli responsum turbatam pacem restitueret ²⁾). Triumviri autem illi, viri in ec-

qui metu retineri Apostolum, ne Corinthum adiret, gloriarentur, et Timothenum ab ipso legatum esse contenderent, ut ipse suum metum tegeret; et quum illo loco patrem audias liberos suos visitandi, atque per longum quidem tempus, desiderio flagrantem, hic gravi vulnere ictus paternus animus ingratos indignosque liberos rogat: *τι θέλετε; ἐν φάρδῳ ἔλθω πρὸς ἡμᾶς οὐ ἐν ἀγάπῃ, αὐτέντα τε προσέτητος.*

1) His addere possis inter salutantes *τοὺς Χλόης* desiderari; hos enim inter illos fuisse, qui Corinthiorum epistolam Paulo attulerunt (XVI: 17), perquam improbabilis est Grotii et Bengelii conjectura. Quomodo quoeso de his dixerit Paulus: *ἀνέταυσαν τὸ ἐπόνον αὐτέντα?* Quanta sollicitudine Pauli animus premeretur ipse testatur: 2 Cor. II: 13. Chloën, Corinthiam matronam, uxorem potius haberem Stephanæ, quae, quum profecto marito dissidias crescerent, alios etiam domesticos Ephesum ad Paulum miserit; — sed quid conjecturis indulgemus?

2) In epistola totius ecclesiae nomine data partium vix mentio-

clesia veneratione dignissimi, cum Apostolo dissidia illa diversis partibus ansam dedisse, tristem Ecclesiae conditionem communicasse videntur. Respondet igitur Apostolus ad varias illas quaestiones ita, ut, quum obiter moncat, se quaedam de partibus istis audivisse, quibus non omnem fidem denegaret, Corinthii, licet nullibi partes diserte ab Apostolo distinguantur, facillime perspicere possent, vera audivisse totamque Ecclesiae conditionem cognitam habuisse Apostolum. Hac respondendi ratione Apostoli elucet prudentia, quippe qui iis, quae e fide dignis testibus comperta habebat, uteretur quidem ad salubrem aegrotanti ecclesiae medicinam adhibendam; ipsius autem morbi, cuius ipsos puderet ecclesiae socios, turpitudinem celaret, rite perspiciens, quum essent qui in sua ipsius auctoritate immodice gloriarentur, cavendum sibi esse, ne directa adversariorum, qui ipsius auctoritatem parvi faciebant, objurgatione et hi exacerbarentur et illorum gloriatio aleretur; ne, ubi de morbo levando ipsum consuluerant, hunc aggravaret. Mox autem mutatur rerum conditio; adveniunt enim *οἱ Χλόης*, quibus demandatum fuisse videtur¹⁾, ut et diversarum partium dissensum, et turpem incestum, et Christianis indignum morem, quo fratres in Ethnicorum ju-

nem fieri potuisse facile intelligitur, imprimis quum inter partes illas una esset, quae Pauli auctoritate gloriaretur.

1) Probabile mihi videtur *τοῖς Χλόης* ab Ecclesiae antistitibus hoc munus demandatum fuisse; ita enim demum explicatur, cur Apostolus nominatim illos tanquam testes proferat, quum cap. XI: vs. 18 neminem nomine laudet; nunc deinde Apostolum aperte adversus partes prodire oportebat.

dicum vocabant, cum Apostolo communicarent. Hunc nuntium Apostoli animo, jam diu sollicitudine atque angore propter Cor. ecclesiae conditionem vexato grave vulnus infligitur; nunc autem haud amplius parcendum est Corinthiis: lacrymis quidem effunditur patris dolor filii perversitatem consipientis ¹⁾, sed tandem severitati cedat misericordia. Antequam epistola illa, qua ad propositas quaestiones responderat Apostolus, dimittitur, alia conscribatur. Res urget, ne mox insanabili morbo languescat ecclesia; resecanda tabes, antequam levamen quid efficiet; paterna castigatione afficiendi sunt Corinthii, ne intempestiva clementia illorum lasciviam augeat. Continuo igitur Apostolus epistolam conscribit, qua partium in ecclesia, quas diserte nominat, dissensui unum illud omnium commune evangelium: *'Ιησοῦν Χριστὸν, καὶ τοῦτον ἐσταυρωμένον* opponit, omni in hominibus gloriatione graviter damnata; incesti excommunicationem solemniter jubet; audaciam denique fratres in ethnicorum iudicium vocandi, Corinthiorum superbiam acerba ironia pungens, severe damnat. Utramque denique epistolam, quam more suo scribæ dictaverat Paulus, ea ratione, qua in Canone leguntur, conjunctam, propriae manus veluti signo signaturus ²⁾, indignatione plenus, recens ab iis, quae in posterioris epistolæ fine (Cap. VI) Corinthiorum incestui Christi amorem opponens (*ἡγοράσθητε γὰρ τιμῆς* vs. 20) scripserat,

1) 2 Cor. II: 4.

2) 2 Thess. III: 17. Cf. omnino da Costa, *Paulus*, I. p. 218 seq.

gratiae atque amoris solitae notae insolitum ἀνάθεμα
praeponit: εἰ τις οὐ φιλεῖ τὸν Κύριον (*Ἴησοῦν Χριστὸν*),
ἥτω ἀνάθεμα, μαρὰν ἀθά (XVI: 22).

Ab hac igitur posteriore prioris ad Corinthios epistolae parte orsi, quaestionem nobis propositam instituamus; deinde ad confirmanda aut illustranda ea, quae inde hausta sunt, ad priorem hujus epistolae partem atque alteram ad Corinthios epistolam provocemus.

Ut igitur a quaestione de edenda carne sacrificali, necne (Cap. VIII, IX et X), initium faciamus, quoniam ad illam respondens Apostolus potissimum adversarios oblique spectasse videtur, vix opus est ut Bauri argumentum, quo decretum Hierosol. haud latum fuisse probet, hinc ductum multis refutemus; nisi enim, nescio quam, magicam vim decreto Hierosolymitano tribuas, diffiteri non potes inter Christianos esse potuisse, qui hoc quoque onus sibi imponi nolent, et iis, qui mandatum Apostolicum tuerentur, sua argumenta opponerent; cum tali autem rerum conditione quid quaeso convenientius est, quam ut in epistola ecclesiae nomine ad Apostolum missa hac de re ipsum consulant? Ad rationem autem attendenti, qua Paulus ad propositam quaestionem respondet, hanc ipsam rerum conditionem Corinthis obtinuisse additum probabile videtur. Non enim Apostolus simpliciter suam sententiam hac de re exponit, additis argumentis, cur ita neque aliter sentiret, prouti hoc ab illo exspectares, qui sententiam suam quavis de re cum illis communicet, quibus nondum innotuerit; sed luculenter ab initio inde adversarios ob oculos

habet, quibus Apostoli quidem sententia innotuerat, qui autem suam sententiam huic opposuerant, quam argumentis atque ratiocinationibus tuebantur¹⁾. Tota quaestio ab Apostolo ita tractatur, ut epistolam ab ecclesiae sociis ad ipsum missam, querelas continuuisse censeamus, quod nonnulli ab edenda carne sacrificali abstinere recusarent, tritis his formulis nisi: γνῶσιν ἔχομεν, quae nos docet: ὅτι οὐδέν εἰδωλον ἐν πόσιῳ καὶ ὅτι οὐδεὶς Θεὸς, εἰ μὴ εἰς, reliqui omnes autem λεγόμενοι Θεοί; neque igitur caro, tali idolo consecrata, aliquid differt a quavis alia carne; qui autem inter utramque discernat, eo ipso infirmitatem suam ostendit probatque de idolorum vanitate nondum satis sibi persuasum habere, ημῖν δὲ πάντα ἔξεστιν. Contra hos igitur ab initio inde suam sententiam ita tuetur Apostolus, ut concedat iis vera esse ea, quae de gnosti sua atque libertate jactarent, amorem autem prae gnosti commendet: η γὰρ γνῶσις φυσιοῖ, η δὲ ἀγάπη οἰκοδομεῖ et τῇ ἔξουσίᾳ τὸ τοῦ ἑτέρου συμφέρον καὶ τὴν οἰκοδομήν opponat.

Quodsi quaeris, quaenam partes in quaestione de carne sacrificali edenda, necne, inter se opponantur, Ethnico-Christianos contra Judaeo-Christianos γνώσεως καὶ ἔξουσίας patronos, et illos quidem Paulinos atque Apollonios, qui libertate Christiana abuterentur, hos vero Petrinos atque Christinos fuisse monent longe plerique interpretes, in quam tamen sententiam quum e praepostera illa, de qua supra quere-

1) Ita quoque judicat Ebrardus in diario: Zuk. d. Kirche 1847. p. 323.

bamur, orta sit agendi ratione, pedibus ire haud possumus. Etsi enim anxiā illam religionem e Judaeorum inveterata opinione, »gentilium idolis vim quandam inesse coecam et mortiferam, (daemonicam), quae in veri Dei observantissimum quemque, si societatem qualemcumque cum iis iniisset, plurimum valeret,”¹⁾, oriundam esse, ideoque probabile esse multos quoque Judaeos conversos eandem opinionem fuisse facile concedimus; ita tamen et Ethnicos omnem, quam a teneris inde deastris suis tribuerant, sanctitatem, simul ac ad sacra Christiana transierant, abjecisse vix credibile est²⁾ , et εἰδωλοθυτῶν detestationem effecisse, ut multi inter Ethnico-Christianos ab iis edendis religiose sese abstinerent credimus. Prouti οἱ ἀσθενοῦντες non unice Judaeo-, sed etiam Ethnico-Christianii fuisse videntur, ita Corinthi, in sede illa Graeci cultus inter Judaeos plurimos fuisse, qui gentis suae in Palaestina opiniones jam diu exuissent³⁾ , et ita

1) Sunt verba Schenkelii in *Diss. crit. histor. de ecclesia Corinthia primaeva*, p. 150 sq.

2) Quod tamen Neandro, l. l. I, p. 313 minus probabile videtur: »denn in dieser ersten Zeit trat das Christenthum von Anfang an bei jedem Einzelnen in eine so schroffe Opposition gegen alles Heidnische, dass sich eine Vermischung dieser Art (des Heidnischen und Christlichen) natürlicher Weise nicht leicht denken lässt;” sed haec ipsa a carne sacrificali religiosa abstinentia vetabat, quominus Ethnica et Christiana fides commiserentur. Loco igitur 1 Cor. VIII: 7: τοὺς δὲ τῷ συνθρεπεῖ, quam lectionem tuentur A. B. 17. Versiones et Patres, atque recepit recentiorum criticorum auctoritas, vulgatae τοὺς δὲ τῷ συνειδήσει praeferendam censeo.

3) Leve hujus rei indicium vide 1 Cor. VII: 18.

ad sacra Christiana transgressi cum liberioribus Ethnico-Christianis πάντα ἔξεστιν gloriarentur, et τῶν ἀσθενούντων religionem alto supercilio despicerent, perquam probabile nobis videtur. Quodsi igitur τῶν ἀσθενούντων et ἔξουσιαζόντων oppositae partes non tam e duplicitis gentis Judaeorum et Ethnicorum discrimine, quam potius e singulorum, qui tam e Judaeis quam ex Ethnicis ad sacra Christiana transierant, angustiore seu liberiore animo repetendae videntur; ita in alia omnia discedimus, quaerentes quomodo dissidium hocce de edenda carne sacrificali, necne, cum quatuor, quae Corinthi erant, partibus cohaereat.

Schenkelius¹⁾ imprimis multis probatum ivit τὸν ἀσθενοῦντας »Petrinos fuisse, ex Petri auctoritate, »qui clarissimus Apostolus et decreto apostolico et exemplo suo (*Gal. II: 12* sqq.) eorum sententiam confirmavit, ita appellatos;»²⁾ illos contra qui libertatem plurimi faciebant, Paulinos fuisse, in hos enim dicta esse, quaecunque ab initio Cap. IX usque ad finem cap. X ab apostolo disseruntur³⁾. Petrum potissimum decreti Hierosolymitani auctorem fuisse, cui Jacobi auctoritas accessit, nos docet *Actuum* Cap. XV; sed, quoniam, eodem narrante Luca (*Act. XV: 30*. *XVI: 4*), Paulus etiam hoc decretum ita comprobavit, ut multis coetibus, cui obsequerentur illud traderet⁴⁾,

1) I. l. p. 146 sqq.

2) I. l. p. 159.

3) I. l. p. 155.

4) Bauri effatum I. l. p. 125: »dass jene Dekrete dazu be-

fateor me haud intelligere, quomodo, si Lucae narranti fides habenda est, Paulini, a carne sacrificali abstinere nolentes, adversus Petrinos ad Pauli auctoritatem provocare potuerint, quum hac in re Petri atque Paulini nonnisi communem caussam agere potuerint 2). Tantum autem abest, ut Paulum cap. IX seq. Paulinos spectare opinemur, ut contrarium veri multo similius nobis videatur; quum enim Schenkelius unice e male intellectis verbis: εἰ ἄλλοισ οὐκ εἰμὶ ἀπόστολος, ἀλλά γε ὑμῖν εἰμι· ηγάρ σφραγίς τῆς ἐμῆς ἀποστολῆς ἴμετις ἐστε ἐν Κροίῳ, argumentetur, nullum dubium esse contendens, quin hoc

stimmt waren in jeder Gemeinde der Heidenchristen gleichsam niedergelegt zu werden" ex Actibus Apostolorum probari sane haud potest. Cf. Ebrard, *Zuk. d. Kirche*, p. 323; vel sic tamen ipsa Pauli contra adversarios argumentatio illud Corinthi a Paulo factum esse suadet, ita ut inter varias παραδόσεις hoc quoque decretum presbyteris tradidisse videatur. Suspicor ita laudem, quae in fine quaestioonis περὶ τῶν εἰδωλοθύτων legitur (Cap. XI: 2): ἐπαιρό δὲ ἡμᾶς, ἀδελφοί, δι τούτη μον μέμηθε, καὶ καθὼς παρέδωκα ὑμῖν τὰς παραδόσεις κατίχετε, hanc, inquam, laudem in meliorem ecclesiae partem, seu potius in omnes illos dictam esse, qui et alia et hoc decretum, tamquam Pauli παραδόσαι observassent; et profecto propter se laudanda erat multorum Corinthiorum religio in observandis iis, quae Paulus commendaverat, et si mox in factionis studium degeneraverit.

2) De Petri exemplo (*Gal. II: 12*) nihil nunc monemus, quoniam e nostra sententia dissidium hocce inter Petrum atque Paulum ante latum decretum Hierosol. locum habuit, et ita referendum est ad ea tempora, quibus tales res observandi necessitas ad salutem comparandam nondum diserte negata erat. Observetur in decreto Hieros. abstinentiam a carne sacrificali et reliquis hac formula commendari: ἐξ ὧν διατηροῦντες ἑαυτὸν εἰ πράξετε.

loco (*ὑμῖν* — *ὑμεῖς*) *Paulini* spectentur; tota Pauli argumentatio suadet, ut illos ab Apostolo spectari statuamus, qui ipsius et libertatem et apostolicam auctoritatem, utramque induculo nexu inter se conjunctam, negarent. Contra hos igitur Apostolus, more suo, ad coetum Corinthiacum a se conditum provocat, eosque, si forte Corinthe erant, et erant sane, ita constrictos tenet, ut hos ipsos, quibus sua prædicatione Evangelium primum innotuerat, apostolicae suae auctoritatis testes proferat¹⁾. Tota haec pericope (Cap. IX: 1—XI) ita composita est, ut Paulus a sua ipsius defensione sensim ad Corinthiorum admonitionem transeat²⁾; illud *μιμηταὶ μον*

1) Recte Osiander, *Comm. ad Cap. IX vs. 2. p. 332*: »Paulus nimmt eine feine Wendung durch οὐλοις, er wusste wohl, dass er auch in Korinth solche Gegner und Bezwifler seines Apostolats hatte, aber es waren Eindringlinge, Emissäre von Judäa her, von wo sich diese Verdächtigung des Ap. bei manchen Gliedern der ihnen feindseligen Parthien eingeschlichen; sie ist nur ein fremdes, von auswärts eingestrautes Element in Korinth“ et deinceps: »Mit feinem Takt und voller Kraft seiner Liebe und seines Vertrauens fesselt er so die Korinthische Gemeinde, gegen die er auf alle andern zu verzichten entschlossen ist, an sich; er zähet auf seine Anerkennung von ihr, da ja eben sie das vorzüglichste Kennzeichen und Denkmal seiner apostolischen Wirksamkeit ist.“ Miror Schenkelium p. 155 sq. hoc de Paulinis interpretari potuisse; quid, quaeso, Apostolus sibi vellet talibus dictis: *οὐ τὸ ἔργον μον ὑμεῖς ἔστε ἐν Κυριῷ*; u. τ. λ. in eos prolati, qui sua ipsius auctoritate immoderate gloriarentur? aut inanes soni erunt: aut illius verba, qui partium studium alat.

2) A Cap. IX versu 24 apologia in paraenesin transire incipit *οὐτω τρέχετε, ἵνα καταλάβητε*; a Cap. X versu 1: *οὐ γὰρ θέλω ὑμᾶς ἀγνοεῖν*. Apostoli oratio prorsus in paraenesin transit;

γινεσθε ab initio in animo habens Apostolus ¹⁾, primum suam ipsius agendi normam contra obtrectatores tuetur, ut hanc deinceps Corinthiis commendet. Subscribimus igitur lubenter hisce Bauri ²⁾ verbis: »dieser ganze Abschnitt (C. IX: 4—27) erhält wohl seine befriedigendste Aufklärung durch die Voraussetzung, die Gegner des Apostels haben die Anspruchlosigkeit und Uneigennützigkeit, die er sich bei den Gemeinden, bei welchen er das Evangelium verkündigte, zur Pflicht machte, als ein von dem Apostel selbst gegebenes Zugeständniss gedeutet, wie wenig er sich in dem Gebrauch der einem Apostel in diesem Verhältniss zustehenden Rechte den übrigen Aposteln gleichzustellen wage;” simul autem persuasum nobis habemus hos ipsos, qui Pauli libertatem atque apostolicam auctoritatem negarent, cosdem esse cum illis, qui a carne sacrificali abstinere Paulique exemplum hac in re sequi recusarent. Quodsi enim Baurus ³⁾ subtiliter e praecedentibus arreptam esse occasionem ab Apostolo ait, ut multa, quae obtrectatores (e Bauri sententia ab iis, qui a carne sacrificiali abstinere recusarent, longe diversi) in Apostoli detrimentum explicarent, ita proponeret Paulus, ut sponte in Evangelii commodum a se suscepta apparerent; animadvertisimus ét concitatam rationem, qua Paulus continuo, postquam suam agendi normam

tribus ultimis sectionibus X: 32, 33 et XI: 1, veluti in compendio contrahuntur, quae antea exposuerat Apostolus.

1) Aliis verbis illud jam enuntiaverat Cap. VIII vs. 13.

2) I. l. p. 281.

3) I. l. p. 280.

propositum (VIII: 13), in adversarios incidit: *οὐκ εἰμὶ ἔλευθερος; οὐκ εἰμὶ ἀπόστολος; οὐχὶ Ἰησ. Χρ. τὸν Κτιὸν. ἡμῶν ἐώρακα; οὐ τὸ ἔργον μου ὑμεῖς ἔστε ἐν Κυρίῳ;* et modum, quo haec pericope (IX: 1—27) cum tota de carne sacrificiali quaestione arctissime connectitur, et digressionis, qua Apostolus suam libertatem una cum apostolica auctoritate tuetur, ambitum suadere, ut hos, adversus quos Apostolus libertatem suam atque auctoritatem apostolicam tuetur, haud diversos esse statuamus ab iis, qui a carne sacrificiali abstinere recusarent. Quid autem? mihi reponet Baurus: num igitur illi, qui a carne sacrificiali abstinere recusabant, iidem erunt cum Petrinis, quum tamen hos luculenter ob oculos habeat Apostolus, ubi Cap. IX: 1 dicit: *οὐχὶ Ἰησ. Χρ. τὸν κύρῳ. ἡμ. ἐώρακα;* et vs. 5 Petrum diserte nominat? Concesso etiam memorata verba e Petrinorum, quales Baurus sibi proponit, mente de externa cum Christo, in terra degente, conjunctione accipienda esse¹⁾; minime tamen ideo Paulum Petrinos per totam hanc suam apologiam²⁾ spectare opinor. Imo quod Aposto-

1) De objectiva q. d., eaque externa, Christi apparitione hoc loco cogitandum esse censemus, qua Paulus tamquam resurrectionis testis et a Christo vocatus apostolicam suam dignitatem vindicet. Cf. Osiander, in *Comm.* p. 381.

2) Paulum memoratis verbis Petrinos oblique petere nobis etiam probabile videtur; simul autem atque praecipue his verbis eosdem spectat, in quos totam suam περὶ τῶν εἰδωλοθύτων disputationem dirigit, Christinos nimirum; qui, in neganda Pauli auctoritate communem cum Petrinis caussam agentes, cæterum magnopere ab iis differebant. Vix opus est, ut moncamus,

lus praedicationis mercedem petendi, seu victum hinc quaerendi jus pluribus probat (IX: 7 — 14) contrarium suadet; de hoc enim jure Petrini haud dubitare poterant. Contra hos Pauli erat, non jus illud, sed vel suam apostolicam auctoritatem Petrinae haud postponendam pluribus vindicare, qua rite vindicata dein e concessis argumentari poterat, suamque liberalem agendi rationem in Evangelii commodum exponere; vel unice, cur nullam mercedem petierit, neque victum ex Evangelio quaesierit exponere, ne amplius perhiberent, ipsum Paulum sua agendi ratione concederet, se caeteris Apostolis postponendum esse.

Neque igitur Paulini neque Petrini a Paulo in quaestione de carne sacrificali spectari videntur; optime autem haec quaestio totaque Pauli hac de re argumentatio, ut nobis videtur, intelligitur, si illi, qui Corinthi a carne sacrificali abstinere solebant, tales fuerunt, qui, dum sua γνώσει atque ξένοσίᾳ gloriarentur, apostolici decreti onus suscipere Paulique exemplum sequi recusarent. Negabant scilicet, Paulum talibus concessis suam libertatem intactam servasse, sed alienum servitutis jugum suscepisse, illumque, inferioris suae auctoritatis sibi consicum, cum reliquorum Apostolorum, e quibus, quoniam Christum haud prouti illi viderat, penderet, auctoritate comparatae, quod diversa ab his in Evangelii praedicatione agendi ratione ipse satis comprobabat, talia iis concessisse,

nos per πρόληψιν in tota hac disputatione de posteriore prioris ad Cor. epistolae parte Paulinorum, Petrinorum atque Christinorum nomine uti; proprie enim in hac ep. parte, ut vidimus, diserte de factionibus haud sermo est.

quae cum vera gnosi atque libertate conciliari haud possent. Talibus igitur, pariter atque praecedenti capite, verae libertatis, Christiano amore temperatae, notionem exponit; vitam ex evangelii praedicatione sustentare licitum esse affirmat atque argumentis ad ductis¹⁾ comprobat, imo ipsius Domini praeceptum esse (IX: 14. coll. *Math.*, X: 10 et *Luc.* X: 8²⁾); at vel sic tamen se hoc jure haud usum fuisse in evangelii aliorumque commodum. Per totam hanc apologiam ita procedit Apostolus, ut singula, quae isibi objicerent adversarii, omniaque convicia in se prolati concedat, imo argumentis comprobet; his ipsis autem suum κανόνημα cerni affirmet (vs. 15), et ita suo ipsorum veluti gladio eos prosternat, quod imprimis acuto illo dicto, quod παράδοξον adeo esse videtur, egregie perficit: ἐλεύθερος ὡν ἐκ πάντων, πᾶσιν ἔμαυτὸν ἐδούλωσα (vs. 19).

Antea jam animadvertisimus, Paulum ab initio inde adversarios ob oculos habere, qui, ipsius sententiam

1) Duplex per totam argumentationem a Paulo allatum argumentorum genus, alterum e gentium moribus, alterum e Judaeorum historia atque lege petitum (IX: 7—9, 24—X. 11), probabile reddit inter Pauli adversarios tam Ethnico-, quam Judaeo-Christianos fuisse; versu 13 duplex etiam argumentum, et ex Ethnico-rum et ex Judaeorum sacris petitum afferri reliquorum argumentorum analogia probabile reddit. Cf. Rücker tus, in *Comm. ad h. l.*

2) Paulus hoc jus ideo pluribus comprobare videtur, tam quoniam Paulini, in magistri verba agendique rationem anxie jurantes, in extrema ruebant, singulosque secus agentes ideo condemnabant, tum quoniam a carne sacrificare abstinere recusantes Petri quidem atque reliquorum Apostolorum agendi rationem Paulinac opponebant, ut Paulum minoris auctoritatis sibi conscientium esse comprobarent, neque tamen ideo ab illorum parte stabant.

cognitam habentes, obsequium ipsi tribuere recusabant. Continuo igitur communem caussam agit¹⁾ cum illis, qui a carne sacrificali abstinentum esse censebant; ad hos autem non unice τοὺς ἀσθενοῦτας τῇ συνειδήσει, sed illos etiam pertinuisse, qui, spreta ἀσθενείᾳ nota, Pauli praeceptis atque exemplo obsequerentur, intelligitur. Hi autem imprimis contra Pauli adversarios suam caussam difficuler tueri poterant; quoniam eorum quidem, quae Paulus praeceperat, tenaces erant; ubi autem hujus auctoritas atque libertas negabatur, quid reponerent ne sciebant, et ne τοῖς ἀσθενοῦσιν καὶ γνῶσιν μὴ ἔχονσιν annumerarentur metuebant. Jam vero horum ipsorum caussam imprimis agere nobis videtur Apostolus²⁾. Tales Corinthi fuisse, qui anxie in singula Pauli verba illiusque exemplum jurarent, confirmat imprimis caput, quo de nuptiis ineundis, necne, agitur, quae quaestio illam de carne sacrificali proxime praecedit, atque tam in Corinthiorum epistola, quam in Pauli mente cum illa copulata quodammodo fuisse vindetur³⁾. Fuisse enim, qui a nuptiis abstinentum

1) Pluralem numerum: οἱδαμεν, ἔχομεν, ἡμῖν, ἡμεῖς (VIII: 1, 4, 6, 8) sensu communicativo intelligendum esse censco.

2) Intelligitur ita, cur Paulus C. VIII: vs. 1 dicat: οἱδαμεν, ὅτι πάρτες γνῶσιν ἔχομεν, quum vs. 7 affirmet: ἀλλ' οὐκ ἐπὶ πᾶσιν ἢ γνῶσι; priore loco illos spectat, a quorum parte ipse stabat, qui γνῶσιν ἔχοντες τοὺς ἀσθενεῖς ἐγένοτο ὡς ἀσθενεῖς; posteriore autem loco τοὺς ἀσθενοῦτας.

3) Vere Ebrardus in diario: Zuk. d. Kirche 1847, p. 324.
»Dass ihn (Paulus) aber seine Ideenassocation gerade von der Versprechung der ethlichen Verhältnisse aus auf den an sich nicht näher hiemit verwandten Gegenstand des Opferfleisches führt,

esse censerent, unice quoniam Paulus coelebs erat, quum ad singulorum privum χάρισμα haud attenderent, docent Apostoli verba: θέλω δὲ πάντας ἀνθρώπους εἶναι ὡς ναὶ ἐμαυτὸν· ἀλλ ἐκαπτος ἴδιον χάρισμα ἔχει ἐπ Θεοῦ, ὃς μὲν οὐτως, ὃς δὲ οὐτως (VII: 7). Deinde tam e cautione illa ab Apostolo adhibita, ne quae scripserat continuo praecepti instar haberentur: τοῦτο δὲ λέγω κατὰ συγγράμμην, οὐ νατ' ἐπιταγὴν (vs. 6)¹⁾, et ex accurata illa distinctione inter praeceptum, cuius unus Christus auctor esse poterat (παραγγέλλω vs. 10, ἐπιταγὴ vs. 25) atque monitum sive suam ipsius sententiam (λέγω vs. 12, γνώμη vs. 25); quam ab altera parte e formulis illis, ubi de sua ipsius sententia agit: γνώμην δὲ δίδωμι ὡς ἡλεγμένος ὑπὸ Κυρίου πιστὸς εἶναι et: δοκῶ δὲ καὶ γὼ πνεῦμα Θεοῦ ἔγειν (vs. 25 et 40), et quod testificatur Apostolus, se unice in ipsorum Corinthiorum commodum monita dare, non autem ut praecepti veluti laqueum illorum cervicibus injiceret (vs. 35); ex his, inquam, appareat illis, qui Pauli exemplum anxie imitarentur ejusque consiliis mandatorum instar obsequendum esse monerent, tales oppositos fuisse, qui Apostoli consilia atque auctoritatem vili penderent et apostolicum, ut ita dicam, jugum sibi imponi recu-

dürfte nicht mit Unrecht daraus erklärt werden, dass dem Apostel die Kombination der προφεία mit dem εἰδωλοθύτοις in jenem Schreiben Apostelgesch. 15 vorschwebte."

1) Cf. 2 Cor. VIII: 8 οὐ καν' ἐπιταγὴν λέγω. v. 10. ναὶ γνέμην δίδωμι.

sarent¹⁾. Hos autem non alias Apostoli auctoritatem Paulinae opposuisse, sed quid Christus praeciperit quaesivisse et huic unice obsequium praestitisse, et modo memorata est tota Pauli argumentatio, quae identidem ad Christum singula reducit, suadent. Eosdem spectare nobis videtur Apostolus, ubi in quaestione de donis spiritualibus (Cap. XII sqq.) Christus corpori comparatur, quod membris suis continentur: per totam enim hanc comparisonem Paulus illos imprimis oblique perstringit, qui, quum unum tantum alterumve membrum constituant, se totum corpus constituere putent, reliqua membra respuentes; qui se solos σῶμα Χριστοῦ εἶναι contendent, quum tantum membra essent, quae certam partem, a Deo ipsis assignatam, constituerent²⁾; reliquos autem, utpote imbecilliores atque viliores, quorum

1) Eosdem spectat, ubi: ἐπιγινωσκέτω, inquit, & γράψω ἴμεν, δὲ Κυρίου εἰσιν ἐντολαί (XIV: 37); diserta Christi praecepta sunt Κυρίου ἐπιτυχαῖ, Pauli, tamquam Apostoli πνεῦμα Χριστοῦ habentis, monita sunt Κυρίου ἐντολαί. Hunc locum multum difficultatis habere, si cum Cap. VII comparas, haud diffidendum; teneatur autem, Paulum utrum Κυρίου ἐντολαὶ sint, necne, ea quae scriperat, Corinthiorum explorationi (ἐπιγινωσκέτω coll. 2 Cor. XIII: 5) subjicere; in censem hic etiam venit locus 2 Cor. I: 24 οὐχ δὲ κυριεύομεν ἴμων τῆς πίστεως. De industria Paulus Christum per totam hanc quaestionem Κυρίου nomine designare videtur; et propter illos, qui in Pauli aut alius Apostoli verba jurarent, quippe Christi solius erat κυριεύειν, hujus unius ἐπιτυχαῖς propter se obtemperandum erat, et propter oppositam his partem, quae, ut videbimus, specie quidem Christum magni faciens, revera tamen divinam illius auctoritatem minneret.

2) Ita interpretamur verba: μέλη ἐν μέρον. Cf. Osiander L. I. p. 555.

ope haud indigerent, alto supercilio despicerent atque
ἐκ τοῦ σώματος Χριστοῦ εἶναι negarent.

His, quae e posteriore epistolae parte collegimus, indicieis unum etiam addatur, e dicto petitum, quod in epistolae fine ὡς ἐν παρόδῳ enuntiatum oblique etiam partes spectare et ad earum indolem cognoscendam aliquam certe lucem afferre videtur. Postquam scilicet Apostolus Cap. XVI: 13 et 14 graviter monita cumulaverat, quibus dissidentes Corinthios adhortaretur¹⁾, quorum ultimum: πάντα ὑμῶν ἐν ἀγάπῃ γινέσθω, vere monente Chrysostomo: ὡς στασιαζόντων; ita scribit: παρακαλῶ δὲ ὑμᾶς, ἀδελφοί, — οἴδατε τὴν οἰκίαν — — — ἔταξαν ἑαυτοὺς²⁾ — — ἵνα καὶ ὑμεῖς ὑποτάσσησθε τοῖς τοιούτοις, καὶ παντὶ τῷ συνεργοῦντι καὶ κοπιῶντι. Ex hoc igitur loco efficimus, tum Corinthi sponte presbyterium quoddam exstitisse, quoniam illi, qui primum Pauli praedicatione³⁾ ad sacra Christiana transierant, sece ipsos muneribus ecclesiasticis obeundis addixerant⁴⁾; tum fuisse in Corinthia ecclesia, qui in hos, atque universe in omnes illos, quorum operae

1) Apollinis mentionem vs. 12 Paulo his monitis ansam dedisse acute monent Rückertus et Meijerus ad h. l.; nobis denuo indicium est, Paulum hanc epistolae partem scribentem varias in Corinthia ecclesia partes cognitas quidem habuisse, directe autem de iis agere noluisse.

2) Haec verba optime parenthetice posita intelliguntur, ita ut: ἵνα καὶ ὑμεῖς κ. τ. λ. cum παρακαλῶ δὲ ὑμᾶς jungantur. Cf. Osiander ad h. l.

3) Cum h. l. cf. Cap. I: vs. 16.

4) Cf. Neander, l. l. p. 204. Vidd. quae supra p. 100 in nota annotavimus.

atque indefesso labore multum debebat ecclesia, officia debitumque honorem deferre atque obsequium iis praestare recusarent.

Tales viros, quales Stephanas cum domesticis, Gajus et Crispus erant¹⁾ , non huic illive factioni addictos fuisse persuasum nobis habemus; ideo enim hi, quos tamen, utpote solos ab ipso Paulo baptizatos, si qui alii, hujus nomine gloriari exspectares, illis ab Apostolo opponuntur, qui ipsius nomine immoderate gloriabantur²⁾ . Talibus autem, utpote Christianae fidei primitiis aut honoratioribus, qui ipsi sponte sua ecclesiae curam suscepserint, Paulum Corintho proficiscentem, ecclesiae curam demandasse, et praecepta traditionesque ($\pi\alpha\varrho\alpha\delta\delta\epsilon\tau\zeta$), ad doctrinam ritusque pertinentes, reliquise, quae a reliquis ecclesiae sociis observarentur, in promptu est. *Paulinorum* factio demum orta videtur, postquam alii, negata Pauli libertate atque auctoritate, illius institutis atque praeceptis obsequi recusaverant; quidnam autem Corinthi primum ansam dederit, ut Paulo oppositae partes orirentur, utrum falsorum Apostolorum e Palaeastina adventus, qui Petri auctoritatem praetexebant³⁾ ,

1) Cap. I: 14, 16.

2) Ita quoque judicat Osiander, ad I: 16 pag. 73: »Es war natürlich dass gerade diese Erstlinge der Gemeinde von ihm selbst getauft wurden; ohne Zweifel Männer, die neber den Partheien standen, so dass es um so stärker hervortrat, wie er von egoistischem Partheiwenen frei sey.“ Cf. p. 810.

3) Ipsum Petrum Petrinae partis auctorem haud fuisse omnes consentiunt; ita Baurus etiam l. l. p. 278: »Petrus selbst,” inquit »hatte an dieser seinen Namen in Corinth führenden Partei

ut Paulinam subverterent; an vero jam antea insitum Graecorum indoli libertatis atque philosophiae studium ecclesiae socios turbaverit, quo ducti praeceptorum aut monitorum, quae ad pacem in ecclesia servandam necessaria, amore Christiano praescripta aut commendata atque hoc uno intellecta, gnosis repudiaret, jugum, ut sibi videbatur, excutiebant; hoc, deficientibus testimoniosis, ad dubia referendum est. Prima caussa fortasse in Graecorum indole quaerenda erit, altera in Pseudo-apostolorum adventu, quorum obtrectationes arripiebant, ut a Pauli auctoritate liberarentur. Res autem sacrificia, religionum antiquarum veluti anima, cum vita communis tam arce copulata et quasi contexta erat, ut haud mirum sit, Christi regeneranti Spiritui multa impedimenta opposita atque grave certamen ineundum fuisse, antequam εἰδωλοθυτῶν detestatio, e Judaismo aut e recens conversorum Ethnico-Christianorum anxietate oriunda, atque hanc ipsam deridens contemptus, e philosophia originem ducens, quae per saecula jam in vitae consuetudinem translata et cum populo communicata, quaecunque ad

keinen Anteil, wie schon daraus zu schliessen ist, dass Petrus nicht selbst nach Corinth gekommen war; wohl aber müssen, wie aus allem hervorgeht, umherreisende *Pseudo-apostel*, die sich auf den Namen des Petrus beriefen, auch nach Corinth gekommen seyn." Videant autem Tübingenses, an sincere agant atque veritatis fundamento totum, quod exstruunt, aedificium nitatur, quodsi Petrinorum, quorum, non Petrus, sed falsus quidam apostolus dux erat, doctrinam adhibent, ut ad hanc normam quae in C. S. Petro tribuuntur dicta atque scripta exigant. Jure talis fallacie — tali enim nomine digna est — Baurum accusavit W. O. Dietlein, das Urchristenthum Halle 1845, p. 107 seq.

gentium religionem pertinerent alto supercilio despiciebat, amore Christiano inter se conciliarentur. Hic imprimis Apostoli τῇ πανοπλίᾳ τοῦ Θεοῦ induti, armis usi οὐ σαρκικοῖς, ἀλλὰ δυνατοῖς τῷ Θεῷ πρὸς καθαίρεσιν ὀχυρωμάτων, in certamen prodibant λογισμοὺς παθαιροῦντες, καὶ πᾶν ὑψωμα ἐπαιρόμενον πατὰ τῆς γνώσεως τοῦ Θεοῦ, καὶ αἰχμαλωτίζοντες πᾶν νόημα εἰς τὴν ὑπακοήν τοῦ Χριστοῦ 1). In his ipsis de carne sacrificali edenda, necne, dissidiis litium factionumque veluti radices latere haud improbabilis nobis videtur Rückerti sententia.

Quod quomodo cuncte sit, nobis diutius in hac quaestione immorandum fuit, ut dubia tolleremus, quae e nulla decreti Hierosolymitani a Paulo facta mentione contra Lucae ἀξιοπιστίᾳ moventur. Probasse nobis videntur totam Pauli argumentationem optime intelligi, si decretum apostolicum Corinthiis notum fuisse ponimus, imo totam Pauli apologiam illud necessario postulare. Quid? quod Paulus ne apologetice quidem, certe non continuo, ad hanc quaestionem respondere poterat, nisi ejus hac de re sententia Corinthi nota erat. Quum autem ad hanc quaestionem accessimus, postquam Lucae, decretum apostolicum referentis, ἀξιοπιστίᾳ jam satis firmis argumentis probavimus, nemo principii, q. d., petitione in argumentando nos accuset. Lucas enim, in judicium vocatus, testimoniis, quae ipsius verbis fidem habendam esse suadebant, praeditus venit; contra adversarios, qui ad Pauli, non disertum testimonium, sed silentium de iis, quae Lu-

1) 2 Cor. X: 4, 5.

cas narraverat, provocabant, ut huic fidem habendam esse negarent, historici caussam dicentes probavimus, Pauli *verba* iis, quae Lucas narrat, indigere, si rite intelligi velint. Tantum autem abest, ut Pauli *silentium* Lucae fidei historicae detrimenti quid afferat, ut multo magis mira atque inexpectata nobis videretur decreti Hierosolymitani mentio in Pauli apologetica argumentatione; contra tales enim, qui alicui praecepto obsequi recusent, quoniam illorum, qui praeceptum aut dederunt aut commendarunt, auctoritatem negent, iterum ad ipsum illud praeceptum provocans Paulus pugnis aërem caederet ventisque sua verba profunderet.

Neque tamen ad exitum jam pervenit nostra disputatio; restat enim, ut videamus utrum indicia ex hac epistolae parte hausta confirmentur iis, quae in priore hujus epistolae parte et in altera Pauli ad Corinthios epistola directius in diversas partes dicta leguntur. Hac tamen in re multo brevioribus nobis esse licebit, quum saepius ad ea, quae alii pluribus comprobarunt, provocatio sufficiet. A dissidiis in vita communis rebusque ad cultum pertinentibus transitum simul facimus ad dissensum in doctrina.

In posteriore epistolae parte errorem refutaturus, quo ducti nonnulli (*τινες ἐν ὕψει XV: 12*) resurrectionem mortuorum negabant, Paulus ab universe concessis, ab evangelii, quod Corinthiis annuntiaverat, summa: Christi morte expiatoria atque resurrectione e mortuis proficiscitur. Haec primaria Evangelii capita Corinthi haud rejecta fuisse ét ipsa res ét Pauli argumentatio e concessis suadet; utrum autem omnes

his capitibus illud momentum tribuerint, quod in Pauli praedicatione iis assignabatur, dubitaverim. Formulae enim illae, quibus utitur Apostolus: *εἰ κατέχετε ἐντός εἰ μὴ εἰκῇ ἐπιστενάσατε* (vs. 2), indicant illum dissensum quandam inter Corinthios oblique tangere vel certe suspicari; quum ratio, qua ēt de se ipso, cum reliquis Apostolis comparato (vs. 8—10), agit, ēt verba, quibus hanc argumentationem concludit: *εἴτε οὐν γάρ, εἴτε ἐπειροι, οὐτω πηρύσσομεν* (vs. 11) suspicionem moveant hunc dissensum conjunctum fuisse cum quaestione de apostolica Pauli auctoritate. Confirmatur autem hoc ipsum iis, quae primis epistolae capitibus disputat Paulus: hic enim ea, quae cap. XV oblique, *ὡς ἐν παρόδῳ*, tanguntur, directe atque veluti ex professo ulterius exponuntur. Postquam scilicet diserte partium nomina: Paulinorum Apolloniorum, Petrinorum et Christinorum citavit, continuo rogat: *μεμέρισται ὁ Χριστός;* (I: 12, 13) qua formula non, uti Schenkelio¹⁾ videtur, unice Christinos petit Apostolus, sed more suo continuo omnes partes prosternit; quodsi enim ad hoc dictum explicandum recte a Schenkelio in auxilium vocatur caput XII, quo Christus cum corpore comparatur, sensus erit: num igitur unus ille Christus in partes consectus est? quod quum illi facerent, qui in Paulo, aut Apollonio, aut Cepha gloriarentur, quoniam in uno corporis membro, repudiato altero, gloriantes ad totum corpus haud attendebant (XII: 14—20); tum illi maxime, qui, caeteris exclusis, sē totum corpus con-

1) I. l. p. 98.

stituere autumarent, sibique solis Christi nomen arrogarent. Haec autem Christi quasi consecratio copulata fuisse videtur cum neglecta, aut non suo pretio habita doctrina de Christi morte, qua veluti communi vinculo omnes inter se constringerentur; quippe per baptismum illius participes facti erant, non ut Pauli aut ejusvis alius, sed ut Christi unice nomen profiterentur: μὴ Παῦλος ἐσταυρώθη ὑπὲρ ὑμῶν, η εἰς τὸ ὄνομα Παύλου ἐβαπτίσθη¹); Sponte ita ad κιγκουμα deducitur Apostolus, cuius caussam deinceps agit, ita quidem, ut duplex nobis fuisse videatur Apostoli propositum. Primum enim se ipsum haud aliud Evangelium, neque alia ratione annuntiare declarat, quam reliquos Apostolos, Christum cruci affixum (*Ἴησοῦν Χριστὸν, ναὶ τοῦτον ἐσταυρώμενον*) praedicantes. Incipiebat pariter atque illi simplissima ratione, ab omni humanae sapientiae specie tam longe remota, ut inter σοφοὺς, δυνατοὺς ναὶ εὐγενεῖς vix invenirentur, qui Evangelium acceperint (I: 26), quae autem sua efficacitate Divinam originem proderet atque Dei veluti signo obsignata esset (*ἐν ἀποδείξει Πνεύματος ναὶ δυνάμεως* II: 4); deinde autem cum proiectioribus in Evangelii elementis (*ο τέλειοι velοι πνευματικοὶ* II: 6. III: 1,) interiorem

1) Recte Osiander, I. 1. p. 71: »Mit kluger Bescheidenheit hebt Paulus in der antithetischen, negativen Fassung dieses Gedankens die Beziehung auf sich selbst, seinen Abstand von Christo hervor, um zuerst die nach ihm sich nennende Parthei zu entwaffnen und zu strafen. Was gegen seine Person als vorgeschrifenes Partheihaupt gilt, das gilt auch gegen die andern.“

doctrinam: *σοφίαν Θεοῦ ἐν μυστηρίῳ, τὴν ἀποκεκρυμμένην*¹⁾ communicabat. Deinde cur ipse interiorem hanc doctrinam (II: 7) cum Corinthiis haud communicare potuerit exponit Paulus (III: 1). Hac argumentatione et *Paulinos* et *Apollonios* potissimum spectare videtur (vs. 5. 6. IV: 6). Quum enim Paulus prima tantum Evangelii *στοιχεῖα* Corinthiis, *ώς νηπίοις ἐν Χριστῷ* tradiderat (vs. 1. 2), Apollo utpote Alexandrinus allegorice e V. F. demonstrandi ratione, ut videtur, usus, post Paulum Corinthum advena, ulterius procedere et interiorem doctrinam cum iis communicare potuerat. Quid mirum Corinthi, ubi indigenae erant *οἱ κανγάμενοι ἐν ἀνθρώποις*, fuisse, et qui anxie in Pauli verba jurarent, interiorem doctrinam repudiantes, quoniam Paulus illam haud exposuerat, et qui Paulum Paulinosque despicerent, Apollonii, quippe interioris doctrinae auctoris, nomen prae se ferentes²⁾? Priore

1) Haec *σοφία* cum de mystico-symbolica V. Foederis interpretatione, qualis v. c. in hac ipsa epistola C. X, vs. 4 occurrit, tum universe de Dei in servando genere humano consilii, atque hujus perficiendi rationis expositione, prouti in epistolis ad Rom., Ephes. et Coloss. uti et hujus ep. Cap. XV legitur, intelligenda erit. Cf. de Wette *Comm.* p. 22. et Osiander, I. l. p. 119.

2) Omnibus illis, quae contra *σοφίαν*, doctrinam de Christo cruci affixo evertentem, duobus prioribus capitibus dicuntur non Apollonii doctrinam peti merito observarunt Schenkelius I. l. p. 10 et 99 seq. et Goldhorn, in diario: *Ilgen's Zeitschr. f. hist. Theol.* 1840, II, p. 152. Cf. Winer *bibl. Realwörterb.* ed. 3ae I, p. 68 seq. Cavendum imprimis est, ne e dissidio inter Paulinos et Apollonios concludas inter Pauli atque Apollonii doctrinam magnum discrimen obtinuisse; se quoque *σοφίαν λαλεῖν* affirmat ipse Paulus (II: 6), sed unice *ἐν τοῖς τελείοις*; quoniam vero Corinthii, quamdiu Paulus inter eos versa-

autem argumentatione duplex adversariorum genus spectat *tam* eorum, qui reliquorum Apostolorum doctrinam atque auctoritatem Paulinae opponerent; ideo enim de apostolica doctrina atque auctoritate agens primum cum emphasi illud *ἥμεῖς* repetit, quo se ipsum prorsus cum reliquis Apostolis conjungit (I: 23. III: 10, 12), dein per illud *καὶ ἐγώ* (II: 1, 3, III: 1), quod identidem *τῷ ἥμεῖς* respondet, speciatim ad suam ipsius doctrinam atque auctoritatem, cum reliquorum Apostolorum doctrina atque auctoritate prorsus convenientem, transitum facit; *quam* eorum, qui *τὴν μωρίαν τοῦ κηρυγμάτος*, nimirum *Χριστὸν ἵσταντο μένον*, obscurarent atque deprimerent *πειθοῖς καὶ διδακτοῖς ἀνθρωπίνης σοφίας λόγοις*.

Per quatuor haec capita, quibus Paulus singulas Corinthiae ecclesiae partes oppugnat, quadruplex partium, quae singulæ inter se different, genus discerni nobis persuasum habemus, quorum omnium commune vitium erat atque omnis erroris veluti fons *τὸ καυχᾶσθαι ἐν ἀνθρώποις*. Quo jure, aut certe qua veri specie reliquorum Apostolorum, atque nominatim quidem Petri apostolicam auctoritatem atque doctrinam Paulinae opposuerint, inquirenti, illi præ caeteris loci attendendi sunt, quibus Apostolus apostolicae auctoritatis notas doctrinaeque summam indicet. Quum igitur primis capitibus *ἡ ἀποκάλυψις διὰ τοῦ Πνεύματος τοῦ Θεοῦ*, *τὸ νοῦν Χριστοῦ ἔχειν* et *ἡ ἀποδεῖξις Πνεύματος καὶ δυνάμεως* tamquam verae apostolicae

batur, nondum ita proiecti fuerant, interiorem hanc suam doctrinam iis exponere haud potuerat; neque sane potuerat Apollonius, nisi prima fundamenta jecisset Paulus.

auctoritatis notae, quas Paulus cum reliquis Apostolis communes habebat, recenseantur (II: 10. 16. 4 coll. 2 Cor. I: 22), et doctrina de Christo cruci affixo omnium Apostolorum *κίνησις* esse affirmetur, Judaizantes fuisse adversarios, qui, ut Pauli auctoritatem infringerent doctrinamque everterent, Petrum ipsi opposuerint, negantes, Paulum germani Apostoli notis munitum fuisse, neque igitur veram Christi doctrinam tradere potuisse, quippe qui Christum haud prout Petrus vidisset, neque, dum in terra versabatur, illius consuetudine atque institutione usus esset, probabiliter disputavit Baurus, argumentis e posteriore epistola potissimum ductis (V: 16 et Cap. X. sqq.) suam sententiam tuens ¹⁾, simul autem horum locorum, imprimis Cap. X. vs. 7 sq. ²⁾ collatione Christinos a Petrinis haud differre statuit. Quodsi merito Bauri de Christinorum indeole sententia multos nacta est asseclas, hoc ipso tamen eam graviter claudicare merito monuerunt Billrothus, Neanderus, Osianderus, quod haud explicet, quare Paulus indeole sua unam eandemque factionem duobus nominibus insigniverit ³⁾, cui vitio frustra mederi

1) l. l. p. 278—297; justo majus momentum in hac quaestione tribuit Baurus his verbis: οὐχὶ Ἰησοῦν Χριστὸν τ. Κιρ. ἡμέρας; 1 Cor. IX: 1; sensu enim adversariorum Paulus nunquam affirmare poterat se Christum vidisse, h. e. illius consuetudine usum fuisse, quod recte animadvertis Schenkelius, l. l. p. 18 seq.; hanc autem objectionem his verbis refutat Paulus, qua sibi, tamquam fanatico, internis tantum revelationibus glorianti, jus denegabant, ut fide dignus testis de Christi resurrectione prodiret. Cf. Cap. XV: 8. Act. I: 22.

2) *Paulus* p. 321. sq.

3) De industria a Paulo nomina cumulata fuisse, ut partium

conatur Baurus¹⁾), haec monens: »Nennte sich die eine Partei nach Paulus, die andere nach Petrus, so lag hierin für den Apostel Paulus noch nichts ausschliessendes; Partei stand gegen Partei, jede hielt sich an ihren Apostel, als ihr Haupt, sobald man aber weiter ging, und sich auch über den Grund aussprechen wollte, warum man sich an Petrus und nicht an Paulus halte, jenem den Vorzug vor diesem geben müsse, und diesen Grund auf dem judaisirenden Standpunkt, auf welchem die Hauptgegner des Apostels in Corinth standen, nur darin finden konnte, dass nur Petrus, nicht aber Paulus ein unmittelbarer Jünger Jesu gewesen sey, so wurde jenes Oppositions-Verhältniss ein ausschliessendes, man stellte einen Grundsatz auf, aus welchem die nothwendige Consequenz gezogen werden musste, dass Paulus gar nicht als ein wahrer Apostel betrachtet werden könne, weil ihm das Wesentliche Erforderniss der wahren apostolischen Auctorität fehle.“ Quis enim credit, fuisse, qui Petri nomen Paulo opposuerint, cur autem hoc facerent neque enuntiaverint neque concii sibi fuerint? praeterea ita notae characteristiae, quas antea merito Petrini adscripserat Baurus, denuo tolluntur²⁾; et jure

studium inter Corinthios pingeret, animadverterat Baurus: *die Christusparthei in Korinth* in diario: *Tübinger Zeitschrift für Theologie* 1831. IV: p. 77; merito autem hoc deverticulum esse, quo difficultas nequaquam tollitur, monet Osiander, l. l. p. 13. sq.

1) *Paulus*, p. 319 sq.

2) Vere Osiander l. l. p. 20: »Waren sie nicht Christiner im Sinne von Baur, so waren sie auch keine Petriner mehr.“

quaeris, quo modo fieri potuerit, ut, simulac nonnulli e Petrinis sibi consciū facti erant, cur Petri auctoritatem Paulinae opponerent, et Christi nomen sibi sumserant, reliqui, ut ita dicam, in hac sua ipsorum inscientia permanere potuerint, neque omnes ad Christinos transierint.

Quid nobis videatur, breviter indicemus: uti Baur in eo assentimus, quod Christinorum origo a Petrinis repetenda sit, quatenus cum illis Pauli auctoritatem ob memoratam caussam negaverint, ita duplēm potissimum notam, e quatuor illis capitibus¹⁾, quae ad cognoscendam partium indolem primarium locum obtinent, petitam, ad discriben, quod inter Petrinos atque Christinos obtinuerit, ducere putamus: altera, quod Paulus iteratis vicibus τὸν σταυρὸν τὸν Χριστὸν, Ἰησοῦν Χριστὸν, καὶ τοῦτον ἐσταυρωμένον, tamquam apostolici χηρύγματος argumentum urget, laud enervandum illud πειθοῖς καὶ διδαχτοῖς ἀνθρωπίνης σοφίας λόγοις, altera, quod diserte affirmat Apostolos²⁾ prae caeteris divina patefactione gaudere (II: 10—16), et post verba illa acri sarcasmo scatentia: ηδη πεκορεσμένοι ἔστε, ηδη ἐπλουτήσατε, χωρὶς ἡμῶν ἐβασιλεύσατε.

1) I Ep. Cap. I—IV.

2) Paulum per illud ἡμεῖς et ἡμῖν, et universe ubi plurali forma in hac disputatione utitur, se cum reliquis Apostolis conjungere consentiunt plerique interpretes; etsi concedendum sit illum prae cacteris de se ipso atque Apollonio cogitasse; illud tamen, quod, postquam de se ipso atque Apollonio egerat, ubi ad conclusionem pervenit, Petrum etiam diserte citat (III: 22); et quod ipse affirmat se ea, quae universe dicta essent in se ipsum et Apollonium transtulisse (IV: 6), luculenter docet, reliquos etiam Apostolos, et nominatim quidem Petrum, Paulo ante oculos fuisse.

καὶ δρελὸν γε ἐβασιλεύσατε· ἵνα καὶ ἡμεῖς ὑμῖν συμβασιλεύσωμεν, quot quantaque mala Apostolis propter Evangelii praedicationem subeunda essent significanter memorat; quibus locis tales ob oculos habet, qui Apostolorum universe auctoritatem parvi facerent¹⁾. Contra his ipsis capitibus monens, Apostolos non nimis faciendos, sed justo pretio habendos esse, ὡς ὑπηρέτας Χριστοῦ καὶ οἰκονόμους μυστηρίων Θεοῦ (IV: 1 coll. III: 5) his oppositam partem perstringit. In his igitur capitibus easdem reperimus oppositas partes, quarum levia jam indicia e posteriore epistolae parte collegimus: nimiam Apostolorum elationem atque veluti adorationem, κανγήσιν ἐν ἀνθρώποις, oppositam eorundem nisi contemtui, certe sententiae haud majoris eos habendos esse, quam quemvis alium²⁾. Posterior nota, quum ad nullam

1) Cf. etiam 2 Cor. III: 5—11 et V: 18—20.

2) Quod turpissimum incestum in ecclesia impunitum latum fuit, et Christiani se invicem in Ethnicorum judicium traxerunt ex hoc etiam fonte manare potuit, quod scil. illis, qui sponte ecclesiae curam suscepserant et ab Apostolis confirmati erant, obsequium praestare recusarent. Inde quoque tam gravem poenam de incesto capiendam esse scripscrat, uti ipse affirmat: ἵνα γνῶ τὴν δοκιμὴν ὑμῶν, εἰ εἰς πάντα ἴντκουοι ἔστε. 2 Cor. II: 9. Coll. V: 12, ubi cum Lachmanno, Meijero et Wettio legendum videtur: Ἡ τοι φανερός τὴν απονεμήνην ὑμῶν τὴν ἴντερ ἡμῶν πρὸς ἴματα. Quidam igitur Corinthii Pauli mandato obediendi paratos sese ostenderant, gravique moerore atque poenitentia affecti erant, ipsoque incestus moerore fere consumebatur et ad meliorem frugem convertebatur, Paulus quod spectabat assecutus erat. Quid mirum igitur, si, probante ipso Paulo, poenam minuerint Corinthii? Nonne illis, quibus epistolam commiserat Paulus, iisdem illis, qui ecclesiae curam suscepserant (1 Cor. XVI: 16, 17), privatim

partem referri possit eorum, qui in cuiusvis Apostoli¹⁾ nomine gloriarentur, necessario ad *Christinos* referenda erit. Quum ita οἱ τοῦ Χριστοῦ primo obtuitu videri possint veram viam inisse, in media καυχήσει ἐν ἀνθρώποις ad Christum unice provocantes; duplii tamen hac in re errore ducebantur; quum enim Apostolos justo minoris facerent atque ita in Scyllam apostolici contemtus incidenterent, gloriationis in eorum nominibus Charybdin vitare cupientes, tum maxime Christi personam divino honore exuebant, simulac prouti reliqui Apostolos, ita illi ipsum Christum suae partis antesignanum declarabant²⁾. Hoc ipsum autem copulatum fuisse videtur cum priore nota, qua non illud pondus tribuebant Christi cruci, quod apostolica praedicatione illi tribuebatur; — duplex ille error, qui, docente historia, saepius dextras renovarunt! — cui utrique pseudo —

mandare potuit Apostolus, ut ipsius nomine in tali rerum conditione de poena quid remitterent? Paulum iracundia abreptum inconsiderate egisse (*1 Cor.* V: 5), et ubi Corinthii ipsius mandato haud obsecuti erant, (*2 Cor.* II. 6 sqq.) prudentiam (Klugheit) ab eo postulasse, ut quod fecerant probaret, ex utrinque loci collatione efficiunt Rückertus et Baurus! Praeter animadversa conferantur quae contra duum viros monet Osianer l. l. p. 243 sq.

1) Paulum per totam disputationem Apollonium secum ipso atque cum reliquis Apostolis exacquare omni dubio majus est.

2) Ita quoque Osianer de Christinis l. l. p. 29: »Indem sie über die Beschränktheit der andern Partheien hinausstrebten, fielen sie in eine noch grössere, und indem sie den Stifter der Lehre über die Organe der Lehre, den Oberhirten über die Unterhirten recht hinaufstellen wollten, stellten si Ihn doch als Lehrer neben die, unter Ihm stehenden Lehrer; eine niedrigere Ansicht von Christi Person und Amt war, es, wozu sie hin neigten.“

apostolorum istorum, qui Petri auctoritatem doctrinamque Paulinae opponebant, praedicatio facile ansam dare potuit. Paulus scilicet — ipsum habemus tantem (*1 Cor. XV: 3* sqq. coll. vs. 1) — Christi mortem pro peccatis nostris, sepulturam, resurrectionem tertio die, et quinam Ipsum resurrectum adspexerint Corinthiis praedicaverat. Illos, qui consuetudinem cum Christo, dum in terra degebat, τὸ γινώσκειν Χριστὸν πατέρα σάρκα, tamquam apostolicae auctoritatis notam postularent, reliquorum quoque Apostolorum hac nota munitorum, nominatim Petri, doctrinam, Christi dicta factaque, vitam hac in terra actam continentem¹⁾, Pauli evangelio, cum Christi morte incipienti, opposuisse haud temere sane suspicamur. Hos ipsos hac sua praedicatione id studuisse, ut Christi crucem, quantum possent, vi sua privarent, et ita legi justitiaeque ex operibus aditum in sacra Christiana denuo pararent, probabile redidunt illi loci, quibus τὴν διανοίαν παιωνῆς διαθή-
νης, οὐ γράμματος, ἀλλὰ πνεύματος, τῇ διανοίᾳ τοῦ Θανάτου ἐν γράμμασιν opponit, illamque arctissime cum Christi morte conjungens διανοίαν τῆς παταλ-
λαγῆς esse declarat Paulus²⁾. Quum ita Christi, ve-
luti doctoris cuiusdam aut Prophetae, doctrina vita-
que inter Corinthios innotuerat; quid mirum, si

1) Prouti hoc e Petrini evangelii compendio *Act. X: 36* sqq. cognitum habemus, quod, vere monente Osiandro, l. l. p. 29 sqq., Papiae ap. Euseb. H. E. III: 39 de Marci evangelio testimonio confirmatur.

2) *2 Cor. III*, quo capite certissime falsos doctores spectat, uti e vs. 1 patet, et *2 Cor. V: 18—21*.

nonnulli, qui apostolicam auctoritatem ferre recusabant, repudiatis Apostolis, in Christo tamquam uno vero magistro ita gloriati fuerint ¹⁾), ut, auditis Illius dictis, quae sublimem philosophiam spirarent, haec arripuerint, et hinc doctrinam composuerint atque *ἐν διδασκοῖς ἀνθρωπίνης σοφίας λόγοις* excoluerint, quae Graeco eorum ingenio multo magis arrideret, quam a Paulo praedicatus *ὁ λόγος ὁ τοῦ σταυροῦ*, quem haud parum suā vi privabant atque veluti obscurabant? Loci igitur, quibus Paulus Christi mortem expiatoriam urget, cum in Petrinos tum maxime in Christinos dicta videntur, iisque locis quibus Christus caput ecclesiae, mundi dominus, *δι' οὗ τὰ πάντα, καὶ ηὔτες δι' αὐτοῦ*, et jam sub Vetere Fodere inter Israëlitas praesens affirmatur, potissimum Christinorum errores ab Apostolo spectari censemus ²⁾.

Quodsi igitur hi Christini iidem sunt cum illis, qui adversus Apostolum eosque, qui hunc sequebantur, sua *γνώσει* atque *εξουσίᾳ* gloriabantur ³⁾, in hac Christinorum parte prima cerni putamus Gnosticismi initia, qui mox in ecclesia primaeva apertius processit, et

1) Christi nomen: *οἱ τοῦ Χριστοῦ*, hinc quoque explicatur; a Petrinis enim notitiam de magistro suo petentes, Iudaicum nomen cum illis ei tribuebant.

2) 1 Cor. III: 21, VIII: 6, X: 4, 9, XII: 5; 2 Cor. IV: 6. Cfr. Osiander, p. 32, qui, nullam Pauli Epistolam, si epistolam ad Colossenses excipias, altiore Christologia vel Logologia Apostoli adeo abundare, quam has duas epistolas ait, et merito non omne polemicum consilium his locis excludendum esse monet.

3) 1 Cor. VIII. Cfr. supra pag. 117 seq.

doctrinâ suâ de Christi persona a primaevae ecclesiae Ebionitis vel Pseudo-Petriniis haud longe recessit; sed philosophiam, oratorio ornatu verbisque ad persuadendum aptissimis commendatam, illi admiscuerit¹⁾. Intelligimus ita per utramque Epistolam acriter oppugnari ab Apostolo ipsi oppositam Judaizantium doctrinam²⁾; quum enim Petri ita directe refellerentur, Christianorum doctrinae fons simul arripiebatur; explicatur simul oppositio τοῦ σταυροῦ τοῦ Χριστοῦ τῇ σοφίᾳ τοῦ λόγου et τῇ σοφίᾳ Θεοῦ τῇ σοφίᾳ τοῦ αἰώνος τούτου³⁾, uti et Pauli non tantum, sed universe omnis apostolicae auctoritatis defensio. Apostoli denique prudentia in eo nobis conspicua est, quod continuo, ubi varias partes citavit, in illam arma movet, quae, etsi numero fortasse minima⁴⁾, maximo errore ducebatur; quum simul timendum esset, ne mox plures in eundem errorem raperentur, quippe qui cum Graccorum indole egre-

1) Magna similitudo fuisse videtur inter Christianorum partem et adversarios, quos P. in ep. ad *Coloss.* oppugnat; hic enim èt Christi divinam naturam contra adversarios evicit, èt falsae γνώσει veram, quae in Christo habetur, γνώσιν, σοφίαν καὶ σύνεσιν πανεμπατικήν opponit (II: 2, 3. I: 9); illam autem cum philosophia conjunctam et πιθανολογίη commendantam fuisse suadet *Col.* II: 8, 4. Denique memorabile esse Colossensibus Theosophis adamatam mysticam illam Christi denominationem: ἡ φαλή (cf. Bähr, *in comm. ad Coloss.* I: 18) in epistolis etiam ad Corinthios (*1 Cor.* XI: 3) occurrere monet Osiander, p. 33.

2) Baur, *Paulus* p. 321.

3) In altera epistola verbo idem spectat Apostolus *2 Cor.* I: 12.

4) *1 Cor.* I: 26. Cf. Neander, *Gesch. d. Pfl. u. s. w. I.* p. 311.

gie conveniret, et ita facile in Corinthiorum animis radices agere posset.

Utrum errores illi, ad quos plurimi inter Corinthios prolapsi erant, ulterius processerint, an vero Pauli epistola ad illos depellendos quid valuerit, quaerenti, altera Apostoli epistola probabiliter suadet, priorem ejus epistolam salutarem vim habuisse. Gaudet enim Paulus iis, quae e Tito¹⁾ de ecclesiae conditione comperta habebat: Corinthiorum sui studio, obedientia, sincera poenitentia²⁾, adeo ut hymnum in Dei honorem, qui victoriam ipsi largitus erat, enuntiet³⁾, et aperte adversus adversarios glorietur, se armis uti, quae essent δυνατὰ τῷ Θεῷ πρὸς παθαίσειν ὀχυρωμάτων, λογισμοὺς παθαιρῶντα, καὶ πᾶν ὑφεμα ἐπαιρόμενον πατὰ τῆς γνώσεως τοῦ Θεοῦ, καὶ αἰχμαλωτίζοντα πᾶν νόημα εἰς τὴν ὑπακοήν τοῦ Χριστοῦ⁴⁾). Praeterea ipsa illa capita (Cap. X. sqq.), quibus vehementer adversarios impugnat, omnię orationis impetu in eos invehitur, idem suadent; his enim luculenter nonnullos tantum

1) Titum a Paulo, postquam priorem epistolam miserat, Corinthum delegatum esse, ut, quod epistolae auctoritas minus valeret, id illius industria atque consilio componeretur, probabiliter conjicit de Wette; neque opus esse ut cum Bleckio, Tito epistolam commissam fuisse statuas, quae perperda foret. Cf. de Wette, *Eind. in das N. T.* ed 4^{ae} p. 240 sqq. et qui ibi laudantur scriptores.

2) 2 Cor. VII: 7, 9, 11, 15; Col. VIII: 7. Tantum valuerant illae literae ad pacem Pauloque debitum honorem restituendum, ut Titus cum gudio sibi in mentem revocaret τὴν πάντων ἴμων ὑπακοήν ὡς μετὰ φόβον καὶ τρόμον ἐδίξαθε αὐτόν.

3) 2 Cor. II: 14 sqq.

4) 2 Cor. X: 5.

(τινας) 1) ob oculos habet, qui factionibus ansam derant et Corinthios deceperant, omnis generis maledictis in Paulum collatis, quosque aperte ψευδαποστόλους, ἐργάτας δολίους, μετασχηματιζομένους εἰς ἀπόστολους Χριστοῦ 2) dicit, eosdem illos, qui ὑπερλίαν ἀπόστολοι sibi esse videbantur 3), quibusque aliud Evangelium annuntiantibus benigne aures praeberant Corinthii 4). Quodsi ita merito a Bauro haec e posteriore epistola capita in auxilium vocata sunt, ut cognosceret Paulo adversantium indolem 5), ita ad memoratum inter utramque epistolam discrimen attendere debuerat; quod ubi facimus nobis persuadetur Paulum haud ita desperatum certamen contra Judizantes adversarios certasse, prouti a Tübicensibus proponitur 6). Etsi enim hos ipsos malae fraudis vi-

1) 2 Cor. X: 2, 12. Coll. III: 1.

2) 2 Cor. XI: 13.

3) 2 Cor. XI: 5; XII: 11. His ὑπερλίαις ἀπόστολος non intelligendos esse veros Christi Apostolos Petrum atque Jacobum, praeēunte Fritzschiō, vere monuit probavitque Schenkelius, l.l. p. 20—22. Verba: Cap. XII: 11 optime etiam intelliguntur, quodsi ibi Paulus suam ipsius a Corinthiis commendationem iis, nimirum falsis doctoribus, opponat, qui literis commendaticiis muniti Corinthum venerant, aut se ipsos commendabant. Cfr. Cap. XII: 1, X: 12, 18.

4) 2 Cor. XI: 4, ubi legitur: εἰ μὲν γὰρ καὶ οὐ σοεῖ — παλῶς ἡρειχεσθε; exspectares vel ἐκγρυποσεῖν, vel ἀνέχεσθε, quod e Cod. B. repositum Lachmannus; nihil vero mutandum, neque haud sine delectu praesens atque imperfectum tempus ab Apostolo scriptum videtur; falsum evangeliū Corinthi adhuc praedicabatur, tempus autem, quo Corinthii illud libenter ferebant, practeritum erat.

5) l. l. p. 283 sqq.

6) Cf. Schwiegler, d. nachap. Zeitalt. I. p. 157 sq. 169 sq.

ros, quos haud puderet Corinthios decipere et menda-
cia conviciaque proferre, ut Pauli auctoritatem obtrecta-
rent ¹⁾, haud devicerit aut in suas partes traxerit;
istorum tamen machinationes irritas fecit, atque,
nisi omnes, plurimos certe ex assecis ab iis avocavit,
et ad unum verum Evangelium veluti captivos re-
duxit; neque mirum adversarios istos his ipsis Pauli
literis, quibus suam auctoritatem adeo imminutam vide-
rent, usos fuisse, ut Apostolo obtrectarent, illum ab-
sentem quidem audacem fortemque videri, praesentem
autem timidum esse atque debilem dicentes ²⁾. Ubi au-
tem Paulum tali obtrectatori minaciter declarantem au-
dimus: τοῦτο λογιζέσθω δὲ τοιοῦτος, ὅτι οἵτι εἰμεν τῷ
λόγῳ δι' ἐπιστολῶν ἀπόντες, τοιοῦτοι καὶ παρόντες
τῷ ἔργῳ ³⁾), seque Corinthum iterum advenam om-
nem inobedientiam puniturum neque cuiquam parciri-
tum esse ⁴⁾; nisi Paulum inania jactasse dicas,
concedendum erit, probabile esse, illum mox Co-
rinthi praesentem ⁵⁾ perfecisse, quod per literas tam
prospere inchoaverat, atque, quum poenas sumse-
rit de iis, qui ecclesiam aut litibus misere turbaverant,
aut libidine aliisve peccatis commaculaverant ⁶⁾,

1) Malis artibus uti debuisse Pauli Judaizantes adversarios, ut
auctoritatem sibi compararent suaque doctrinae viam sternerent
supra p. 83 seqq. explicuimus. Varia maledicta in Pauli et auctoritatem
apostolicam et indolem collata vide ap. Schliemannum, die
Clementinen, p. 490 sq. nota 30.

2) 2 Cor. X: 10, 11.

3) 2 Cor. X: 11.

4) 2 Cor. X: 6; XIII: 2.

5) Act. XX: 2.

6) Utriusque generis vitium ob oculos habet atque distinguit
Paulus 2 Cor. XII: 20 21.

ecclesiae pacem atque sanctitatem restituisse. Confirmatur hoc iis, quae scribit Clemens *Romanus* epistolae suae ad Corinthios initio 1), ubi multus est in laudanda Corinthiorum, quam omnes peregrini celebrabant, firma fide, pietate, perfecta gnosi, legum obedientia, eorum, qui praepositi erant, veneratione, aliisque virtutibus; brevi: οὐτως εἰρήνη βαθεῖα καὶ λιπαρὰ ἐδέδοτο πᾶσι, καὶ ἀπόρεστος πόθος εἰς ἀγαθοποιῶν, καὶ πλήρης πνεύματος ἀγίου ἔκχυσις ἐπὶ πάντας ἤγινετο.

In acri igitur certamine, quod primo saeculo religioni Christianae contra illos certandum fuit, qui varios errores, cum ex Ethnismo, tum maxime e Judaismo petitos, alebant atque omni virium intentione, nullisque non artibus dolisque usi, τῷ σταυρῷ τοῦ Χριστοῦ opponebant, huic victoriam compararunt Apostolorum, quippe extraordinariis charismatibus instructorum, arma; sive dictis atque ratiocinationibus, ab ipso Christo iis suppeditatis, quaecunque sibi objicerentur dejicerent; seu facto, potestate usi, a Christo iis concessa, rebelles punirent. Quae autem postea, tribus quatuorve decenniis post, in eadem Corinthia Ecclesia, testante modo memorata Clementis epistola, exstitit seditio (*στάσις*), etsi minime confundenda cum dissidiis de doctrina, qualia e Pauli epistolis cognita

1) § 1 et 2. Clementis ad Cor. epistola exeunte fere saeculo I conscripta videtur, certe post epistolam ad Hebr. et delecta Hierosolyma. Cf. Schliemannus, 1. 1. p. 409 sqq. nota 1 contra Schenkelium et Hutherum, qui, praecūntibus antiquioribus, eam ad annum 64 vel 65 refulerant.

habemus 1); ita tamen quandam analogiam nobis habere videtur cum dissidiorum istorum primordiis. Prouti enim in prioris Pauli ad Cor. epistolae parte posteriore, unde factionum initia cognoscenda esse censemus, vestigia reperimus, Corinthios et Paulo et iis, qui, ipso Apostolo probante, ecclesiae curam suscep-
rant, diffidisse atque obtemperare noluisse ²⁾, ita ex eodem fonte manasse et facile explicari videtur suc-
cessus ille, quem pauci quidam juvenes, qui arrogan-
tia suaque gnosi exultantes seditionem in presbyteros moverant, tempore Clementinae epistolae habuerunt, adeo ut magna ecclesiae pars ab eorum parte staret, summaque in ecclesia ἀταξία et turpissima morum corruptela dominaretur ³⁾. Reperimus igitur in hac etiam seditione Graecorum indoli tam penitus insitum libertatis studium, quod male temperatum aut intempestive commotum in licentiam abire solet, omne-

1) Schenkelium haud audiendum esse, qui solam Christi-
norum partem a Paulo haud repressam esse, et hanc ipsam a Clemente Romano oppugnari censet, vere monnit Baurus in hujus dissertat. recens. in diario: *Jahrbücher f. Wissenschaft. Kritik* 1839 N. 88 seq. Cf. ejus *Paulus* p. 314 seq. Ipsum cap. 47, ubi factiones a Paulo oppugnatae, Paulini, Apollonii, Pe-
trini, non autem *Christini*, memorantur, Schenkelii sententiae non tantum non favere, sed multo magis obesse quam vere mo-
neant Dähne die *Christusparthei in d. apost. Kirche zu Korinth*, Halle 1841, p. 107 seqq. et Osiander, l. l. p. 24; ita laudes etiam, epistole initio in Corinthios collatae, suadent, pacem in-
tegre restitutam fuisse, quam drepente στάσις illa crumperet.

2) Cfr. supra p. 122.

3) Cfr. Schenkel, l. l. p. 79 seq., qui plerosque locos de-
scripsit.

que regimen aut legem pro intolerando jugo habens, quod exuat, suam ipsius γνῶσιν tamquam summum judicem aut regem veneretur.

Confirmatum ita vidimus quod jam in quaestione de carne sacrificali vidimus, ἔξουσίαν καὶ γνῶσιν Corinthi arce conjunctas fuisse; neque mirandum igitur est, Corinthiis gratum acceptumque et cupide ab iis arreptum fuisse quocunque valere posset ad removenda quaecunque huic libertati obstare, aut cum gnosi minus convenire sibi viderentur; quum igitur Judaizantes illi doctores et Pauli auctoritatem infringenter, et aliam doctrinam proponerent, intelligimus fuisse, qui hoc arripuerint, ut omne jugum exuerent.

Postquam ita disputatione nostra Christinorum factioni easdem notas proprias esse reperimus, atque illis, quos Paulus in quaestione de carne sacrificali oppugnat; certius etiam atque tutius quam antea repetimus, Paulum addecretum Hierosol. provocare haud potuisse, ipsamque de carne sacrificali exortam litem cum factionum indole comparatam, atque rationem, qua Paulus illam tractat, testimonium praebere pro Lucae fide historica in referendo memorato decreto.

EPILOGUS.

Restat, ut brevi conspectu quae hac disquisitione probare conati sumus in unum contrahamus.

Comparatione instituta inter ea, quae Paulus scribit in epistola ad *Gal.* Cap. II: vs. 1 seqq. atque Lucae relationem *Act.* Cap. XV, longe diversa ab utroque auctore referri vidimus. Pauli in epistola sua apologetae consideratio nos docuit, hunc ea, quae, testante Luca, *Hierosolymis* acta fuerunt (*Act.* XV), haud omittere potuisse. Itaque aut Lucae narranti fides historica deneganda, aut Paulus miser Apologeta dicendus erit, nisi Paulum epistolam suam ante concilium Hierosolymitanum dedit probabilia argumenta suadeant. Quoniam Pauli epistola ecclesiis, ab ipso conditis, data est, quaerendum erat, utrum Apostolus ante concilii Hierosol. tempora *Galatiae* regionem adierit, necone. Vidimus autem *Lycaoniae* partem atque *Pisidiam*, Apostolorum aetate, ad *Galatiae* provinciam pertinuisse, ubi ante concilium Hierosol. Evangelium annuntiavit Paulus una cum

Barnaba eo itinere, quod Lucas refert *Act. Capp. XIII et XIV.* Hisce in *Lycaoniae* parte atque *Pisidia* ecclesiis datam esse Pauli epistolam confirmabatur notis, quae ex ipsa epistola petitae cum iis, quae memoratis *Actuum* capitibus leguntur, conveniebant.

Probabiliter ita concludimus Paulum epistolam suam ταῖς ἐκκλησίαις τῆς Γαλατίας conscripsisse paullo ante concilium Hieros., quum *Antiochiae* in *Syria* versaretur (*Act. XIV*: 26—28). Iter a Paulo *Gal. II*: 1 seqq. memoratum idem esse posse cum altero itinere, a Paulo atque Barnaba *Hierosolyma* suscepito, quod paucissimis verbis memorat Lucas *Act. Cap. XI*: 30 et *XII*: 25, atque hanc sententiam neque Lucae de multis rebus silentio, neque chronologica difficultate infringi, probare conati sumus. Pauli denique atque Petri altercationi, *Gal. II*: 11 seqq. memoratae, e proposita sententia lucem afferri ostendimus.

Quum eorum, quae catenus disputata erant, consequens esset, ut Lucae, Apostolorum conventum referentis, fides historica Pauli auctoritate haud infringatur, simul e disputatis ecclesiae Christianae conditionem comperimus, quae, utpote in dies magis magisque judaizantium Christianorum adversus Paulum certamine turbata, talem conventum ab Ecclesiae antesignanis habitum fuisse valde probabile reddat. Ut autem conventum illum revera habitum atque decretum Hierosol. latum fuisse probaremus, provocavimus et ad mutatam deinceps, testantibus reliquis Pauli epistolis, certaminis faciem, et ad ipsam Pauli docendi atque agendi rationem; utraque enim vix ex-

plicari potest, nisi verum est, quod refert Lucas, Paulinae doctrinae reliquorum Apostolorum consensu in ecclesia victoriam concessam fuisse, et hos, ad quorum auctoritatem in *Galatiae* ecclesiis provocaverant Pauli adversarii, suam de legis observatione sententiam ita enuntiasse, ut variarum ecclesiarum sociis innotuerit. Tandem desivimus in solvenda dubitatione, quae e nulla decreti Hierosol. in epistolis ad *Corinthios* mentione facta contra Lucae fidem historicam moyetur. Vidimus autem, cum Paulum ad decretum Hieros. provocare haud potuisse, tum ipsam de carne sacrificali exortam litem cum factionum indole comparatam, atque rationem, qua Paulus illam tractat, testimonium praebere pro Lucae fide historica in referendo memorato decreto.

Quod si quis miretur, me in hac disquisitione ea haud respexit, quae opposuit Vir Consult. da Costa (*Paulus II*, pag. 403—417) dubiis, quae contra illius sententiam de conscriptae epistolae ad *Galatas* tempore aliisque arcte cum hacce conjunctis quaestionibus moveram (in diario: *de Gids* 1847, pag. 606—622); is sciat dissertationem jam conscriptam fuisse, quam Viri Consult. opus ederetur; quam autem, lecta ejus argumentatione, nihil in ea invenirem, cur a mea sententia desisterem, imo plurima hac ipsa disputacione refutata viderem; neque in dissertatione recensioni, vel potius anti-criticae aptus locus mihi concedi posse videretur, hanc anti-eriticam seorsim instituere decrevi, quam igitur mox diario cuidam inseram. Neque

tamen silentio praeterire licet Rückerti disputationem adversus Böttgeri sententiam de *Galatiae* situ, quam demum legere mihi licuit, priore dissertationis parte jam typis expressa (loco dissert. pag. 89, ann. 2 citato); imprimis quoniam Doct. van Vloten (*de Tubinger school en hare Holl. tegenstanders*, p. 106 nota 1) hac disputatione ea, quae, praeēunte Böttgero, de *Galatiae* situ monueram, prorsus refutari (*de volledige weerlegging van Böttg.'s stellingen*) contendit. Prudentius tamen ipse Rückertus hac de re judicavit; duplicem enim quaestionem sibi proponens: 1) »was hatte Amyntas inne gehabt? und 2) was kam »davon an Andere, was wurde Provinz?“ e quarum solutione omne de Böttgeri sententia pendet judicium, continuo respondet: »Auf keine von beiden ist »eine völlig sichere Antwort möglich;“ et profecto fatendum est, non accurate fines describi posse regionum, quae sub Amynta cum ipsa *Galatia* in unum regnum, mortuo Amynta in unam provinciam conjunctae fuerunt. Ante omnia vero monendum est, nos haud cum Böttgero statuisse Paulum numquam ipsam *Galatiam* adiisse (cfr. dissert. pag. 26 seq. et 29 ann. 1); nostram sententiam igitur haud spectant ea, quae disputat Rückertus (l. l. p. 106—112); unice prima disputationis pars (pag. 98—106) hic in censem venit. Quid autem jam Rückertus, instituta disquisitione, statuit? Prorsus idem, quod Böttgerus, si hoc unum excipias *Iconium*, *Lycaoniae* urbem, haud ad *Galatiae* provinciam relatam fuisse, quippe quae non ad Amyntae, sed ad Philemonis, *Ponti* regis, ditionem pertinuerit, testante

Strabone (XII pag. 853: ἐνταῦθα δέ πον ναὶ τὸ Ἰκόνιον ἔστιν, πολίγυρον εὖ συνωρισμένον, — τοῦτο δ' εἶχε Πολέμων). Quo jure autem Rückertus (l. l. p. 106) scripscerit: »Aber wollten wir auch Alles »zugeben, über Iconium und Umgegend, *worauf hier* »*Alles ankommt*, könnten wir doch nichts zugeben, »weil diese gar nicht zu Galatiën gehörte,” fateor me haud intelligere; etsi enim *Iconium* haud ad *Galatiae* provinciam pertinuerit, *Derbe* tamen atque *Lystra* (cff. Strabo XII, p. 853 C et Plinius *Hist. Nat.* V: 42, ubi diserte inter *Galatiae* incolas memorantur *Lystreni*) atque *Pisidia* eo referendae sunt, ipso consentiente Rückerto (p. 103 seq.). Negat autem Rück. has regiones communi *Galatiae* nomine designatas fuisse (p. 104 seq.): »dies wäre aller Analogie alter und neuer Zeit zuwider. Völker werden zwar zu Reichen vereiniget, und in ihrer Beziehung zu diesen dann als Theile derselben benannt, ne legen aber im Umgangsleben *ihren ursprünglichen Namen* innerhalb mehrerer Menschenalter nicht ab.” Haud nego: at vero, quum retineatur nomen tam urbis quam regionis, cuius incola quisque sit; is commune habet nomen cum aliarum urbium atque regionum incolis a regno, seu provincia, ad quam utriusque pertinent. Ita v. c. qui *Antiochiam* atque *Lystram* incolunt, dicuntur *Antiocheni* atque *Lystreni*, vel a regione *Pisidae* atque *Lycaones*, vel denique a provincia *Galatae*. Quidni ergo Paulus variarum urbium tam in *Pisidia* quam in *Lycaonia* incolis epistolam mittens, hos communi *Galatarum* nomine designaverit (*Gal. III: 1, coll. I: 2*)? Praeterea mo-

neo, exempla, a Rückerto (l. l.) de variis in *Gallia* atque *Hispania*, et nostra aetate in *Austriensi* imperio stirpibus allata, quae singulae suo nomine (ubi autem conjunctae spectantur communi nomine) designantur, haud prorsus cum nostra quaestione convenire; aliud enim est, ubi tota stirps, aliud ubi nonnullae tantum e majore regione urbes peregrinae provinciae adjunguntur. Paulus vero in epistola sua non *Lycaones* universe, sed tantum incolas illius partis, quae ad *Galatiam* pertinebat, quos una cum Barnaba adierat, spectabat. — Nequaquam igitur Rückerti disputatione sententiam refutatam video, quam et in diario: *de Gids*, et in dissertatione tuitus sum; illud unice ad dissert. pag. 28 reg. 16 et pag. 70 reg. 20 attendatur, ut urbis *Iconii* memoratio elidatur.

T H E S E S.

I.

Iter, cuius ipse Paulus mentionem facit in epist. ad Gal. Cap. II: vs. 1 sqq., non est *tertium* post conversionem ab Apostolo Hierosolyma susceptum, quod describit Lucas *Act.* Cap. XV; sed convenit eum *altero* itinere, a Luca *Act.* Cap. XI: vs. 30 et XII: vs. 25 memorato.

II.

Errant, qui epist. ad Gal. Cap. II: vs. 1 vulgatam lectionem διὰ δεκατεσσάρων ἐτῶν mutandam esse censeant in: διὰ τεσσάρων ἐτῶν.

III.

Epistolam ad *Gabatas* ante concilium *Hierosolymitanum* (*Act.* Cap. XV) conscriptam esse contendimus.

IV.

Frusta igitur *Tubingenses*, q. d., Theologi e comparatione Capitis II epist. ad *Gal.* cum *Act.* Capite XV *Lucae* in referendis iis, quae hoc Capite leguntur, negant fidem historicam.

V.

Haud meliore jure e nulla decreti *Hierosolymitani* in epistolis ad *Corinthios* mentione facta argumentantur, ut latum esse illud decretum negent.

VI.

Mutata facies pugnae, quam Judaizantes adversarii cum Paulo inierunt, qualis ex epistolis, post epistolam ad *Galatas* missam conscriptis, cognoscitur, memorato decreto explicatur, et ita *Lucae* in eo referendo fidem historicam tuctur.

VII.

Tubingensium critica a *petitione principii*, q. d., proficiscitur.

VIII.

Justini Martyris τὰ ἀπομνημονεῖματα τῶν Ἀποστόλων a nostris canoniciis Evangelii diversa fuisse probari nequit; imo cum hisce convenisse videntur.

IX.

Epistola ad *Romanos*, cui conscribendae pariter atque reliquis epistolis ipsius ecclesiae conditio ansam dedit, irenicocatechetica dicenda est.

X.

Actuum liber e scriptis monumentis compositus nobis videtur.

XI.

Calculum adjicimus his *Bauri* verbis: »das hohe Interesse,
»das die in so vielfacher Beziehung ausgezeichneten beiden
»Briefe des Apostels Paulus an die corinthische Gemeinde
»gewähren, liegt grossentheils eben darin, dass sie uns weit
»mehr, als diess bei irgend einer andern neutestamentlichen
»Schrift der Fall ist, in die lebendige Mitte einer erst sich
»gestaltenden christlichen Gemeinde hineinversetzen, und die
»Verhältnisse, aus welchen das neue vom Christenthum an-
»geregte Leben in seiner Eigenthümlichkeit sich entwickeln
»sollte, zur klaren Anschauung bringen.“ *Paulus, der Apostel Jesu Christi*, pag. 260.

XII.

Verba Christi, *Matth.* XI: 12: ἡ βασιλεία τῶν οὐρανῶν
βιάζεται, καὶ βιασται ἀρπάζονται αὐτὴν in vituperium dicta
esse censeo.

XIII.

Loco *Joh.* VI: 51^b verba: ἦν ἐγώ δόμω spuria sunt.

XIV.

Vere Nitzsch: »die *Lutherische* Reformation spricht, weg
»mit der jüdischen Werkheiligkeit, aber was nicht wider das
»Evangelium ist, ist für dasselbe. Die *Zwinglische*: weg mit
»dem Götzendiffus; was nicht aus der Bibel kommt, ist wi-
»der sie.“ *Praktische Theologie*, T. I. p. 416.

XV.

Quod summum est consolationis, qua homines indigent, ut demissus animus erigatur et confirmetur, id efficere quidem studuerunt rationis ope antiqui philosophi, neque tamen perfecerunt; id demum perfecit religio Christiana.

XVI.

Ethices Christianae propositum atque ambitum vere his verbis describit cl. Harless: »Man beschreibe den Eintritt und den Umfang jenes Verhältnisses, welches der Apostel nennt: „μορφοῦται Χριστός ἐν ἡμῖν. Gal. IV: 19.“ Christliche Ethik, pag. 3.

XVII.

Polemica, non apologetica, a suggesto sacro removenda est.

CORRIGENDA.

Pag.	5 Ann.	1 ad Romanos, quam	<i>lege ad Romanos. Quam</i>
"	" "	" illis	" illos
"	8 reg.	13 interjectis quatuordecim annis	" per quatuordecim annorum spa-
"			tium
"	9 "	17 vocavit	" misit
"	13 Ann.	2 seriel.	" seriei inservit.
"	15 reg.	7 demum	" denuo.
"	16 "	20 1)"	" 1)
"	17 "	2 referunt	" refert
"	18 Ann.	2 scribens	" scribentem
"	19 "	2 reg. 5 Paulus se	" Paulum
"	" "	8 ipse docet	" doceat <i>Lucas</i>
"	27 reg.	1 urbibu	" urbibus
"	" "	3 memorasse	" memorasse,
"	28 "	11 favere,	" favere
"	34 "	5 annuntiaret.	" annuntiaret
"	33 "	4 <i>Ἀγθιόζεαν</i>	" <i>Ἄριόζεαν</i>
"	40 "	11 Hieros	" Hieros.
"	41	addatur annot. 1) sequentis paginæ; contra annot. 3) paginæ	
		41 ad pag. 42 referatur.	
"	44 Ann.	hätten die	<i>lege</i> hätte der
"	45 "	1 Hierosolyma adiisse	" Hierosolymis abiisse
"	53 "	2 occurunt	" occurrant
"	54 reg.	16 statuere	" statuerem.
"	56 Ann.	1 ita legatur: Unicum, quod, ut <i>διὰ</i> i. q. <i>μέτα</i> significare pro-	
		betur, e N. T. <i>Act. XXIV</i> : 17 assertur, exemplum optime in-	
		telligi posse, si <i>vulgaris</i> praepositionis significatio retinetur,	
		merito animadvertis Agardhus rel.	
"	65 Ann.	1 a Basnagio	<i>lege Basnagio</i>
"	69 reg.	12 <i>Iouðaias</i>	" <i>Iouðaias</i>)
"	74 "	25 offeret.	" offeret.
"	79 Ann.	3 et traditio,	" traditio et
"	82 "	1 in fine: reliquarum	" reliquorum
"	95 reg.	16 <i>Dubitatio</i> ,	" <i>Dubitatio</i>
"	93 Ann.	3 in ipsum	" id ipsum
"	118 reg.	11 isibi	" sibi
"	130 Ann.	1 opus esse	" opus est

